प्रकाशक :
प्रभात प्रकाशन,
२०५, चावड़ी बाजार,
दिल्ली–६

●

लेखक :
आचार्य चतुरसेन

●

●

१९६७

●

मुद्रक :
चन्दूभाई पटेल,
अशोका प्रिन्टर्स,
हाथरस।

●

मूल्य :
२·५०

कथासार

वहुत दिन हुए, अयोध्या में एक राजा राज्य करता था। उसका नाम दशरथ था। वह महाप्रतापी इक्ष्वाकु-वंश का था। वह स्वयं भी वड़ा वीर था। देवराज इन्द्र तक उसके मित्र थे। देवासुर संग्राम में उसने वड़ी वीरता दिखाई थी।

इसकी तीन रानियाँ थीं, जिनसे वृद्धावस्था में उसके चार पुत्र हुए। छोटी रानी वहुत सुन्दरी थी। उसका नाम कैकेयी था। उपयुक्त समय होने पर चारों पुत्र युवा अवस्था को प्राप्त हुए और उनके विवाह भी हुए। वड़े पुत्र का नाम 'राम' था। उनकी पत्नी का नाम था 'सीता' जो मिथिला के राजा जनक की पुत्री थी। जव राम युवा हुए, तव महाराज दशरथ ने राम को युवराज वनाकर वानप्रस्थ लेने की ठानी। अभिषेक के समय कैकेयी ने अपने पुराने वरदान मांग कर राम को वन भिजवा दिया और अपने पुत्र भरत को राजगद्दी दिला दी। राम माता-पिता की आज्ञा मानकर वन को चले गये और इनके साथ ही उनकी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण भी गये। दशरथ को इस वात से इतना दुःख हुआ कि उन्होंने अपना प्राण त्याग दिया। भरत ने राजा होना अन्यायपूर्ण समझ कर राजा होने से इन्कार कर दिया। पहिले तो उन्होंने राम को मनाने की चेष्टा की; परन्तु जव उन्होंने नहीं माना तो उनकी खड़ाऊँ सिंहासन पर रखकर राज्य-प्रवन्ध करना स्वीकार कर लिया। उधर चौदह वर्ष तक राम, सीता और लक्ष्मण को साथ लेकर इस वन से उस वन तक भटकते रहे। वन में उनको वड़ा कष्ट हुआ, विशेषकर सीता को, जो वहुत ही कोमल और भीरु थीं। उन्होंने काहे को जंगल देखा था। उन्हें भी नंगे पैर पति के साथ भूखे-प्यासे घूमना

पड़ा। राह में बड़े-बड़े भयानक जंगली पशुओं और राक्षसों के हाथों भी कष्ट भोगना पड़ा।

परन्तु सबसे बड़ी विपत्ति जो उन पर आई, वह यह थी कि वनवास के अन्तिम दिनों में रावण सीता को हर ले गया। रावण लंका का परम प्रतापी और महावीर राजा था। उसके पास बड़े-बड़े भयानक राक्षसों कि भारी सेना थी। उसका भाई कुम्भकर्ण ही एक ऐसा भारी योद्धा था कि जिसका कोई सामना नहीं कर सकता था, और उसके पुत्र इन्द्रजीत से तो देव और दानव भी भय खाते थे। उधर वनवासी राम अकेले थे। करें तो क्या करें। फिर भी उन्होंने बड़ी वीरता और साहस से शत्रु का सामना किया और उसको जड़-मूल से नष्ट करके सीता का उद्धार किया। वनवास की अवधि पूरी होने पर जब वे अयोध्या लौटे और राजा हुए, तब एक दिन उन्होंने सुना कि एक धोबी अपनी धोबिन से, जो कि बिना उससे पूछे बाप के घर चली गई थी, नाराज हो रहा था, और कह रहा था कि मैं क्या रामचन्द्र हूँ कि राक्षस के घर गई हुई सीता को अपने घर रख लिया। इस बात को दूत से सुनकर राम को बड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने सोचा कि जब प्रजा के मन में ऐसा अपवाद है तो ऐसा न हो कि प्रजा में बुरा आदर्श स्थापित हो, क्योंकि प्रजा को प्रसन्न रखना ही राजा का धर्म है। ऐसा विचार कर उन्होंने गर्भवती सीता को वन में भिजवा दिया। वहाँ वह १८ वर्ष तक वाल्मीकि जी के आश्रम में रहीं। वहीं उनके दो पुत्रों का जन्म हुआ, जिनका नाम लव और कुश रखा गया। १८ वर्ष बाद रामचन्द्रजी ने अश्वमेध यज्ञ करने की ठानी, तब अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा गया और उसकी रक्षा का भार कुमार चन्द्रकेतु को सौंपा गया। जब वह घोड़ा वाल्मीकिजी के आश्रम में पहुँचा तो लव और कुश ने उसे बाँध लिया। ये लव और कुश सीताजी के पुत्र थे और वाल्मीकि जी ने उनको सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा दी थी।

अश्वमेध यज्ञ का यह नियम होता है कि एक श्यामवर्ण घोड़ा छोड़ा

जाता है। वह चाहे जिधर जाय, उसके पीछे चतुरङ्गिणी सेना रहती है। जो कोई उसको पकड़ता है, उसी से यह सेना लड़ती है, उसको विजय करती है और उसे बाँधकर यज्ञ में ले आती है। यज्ञ में आकर उसे सेवा करनी पड़ती है। लव-कुश ने जब घोड़े को बाँध लिया तो कुमार चन्द्रकेतु ने उनसे युद्ध किया, परन्तु जब उन्होंने देखा कि ऋषीकुमारों ने बड़े कौशल से युद्ध किया है तो वे दंग रह गये। इतने ही में महाराज रामचन्द्रजी ने आकर युद्ध को रोक दिया और जब उनको ज्ञात हुआ कि ये मेरे ही पुत्र हैं तो उनका प्रेम उमड़ आया और उन्होंने उनको छाती से लगाया। इसके पश्चात् सीताजी से भी उनकी भेंट हुई और जैसा कि स्वाभाविक था, दोनों प्रेमी अपनी मूक वेदनाओं को लिए हुए एक-दूसरे से मिले परन्तु भाग्य ने उन्हें फिर पृथक कर दिया, सदा के लिए।

पात्र-परिचय

पुरुष

राम—रघुकुलभूषण, अयोध्या नरेश
लक्ष्मण—राम के लघु भ्राता
वाल्मीकि—महर्षि (रामायण के रचियता)
वशिष्ठ—मुनि (राम के कुल-गुरु)
लव, कुश—राम के पुत्र
जनक—मिथिला-नरेश, सीता के पिता
चन्द्रकेतु—लक्ष्मण के पुत्र
ऋषिकुमार—वाल्मीकि ऋषि के आश्रमवासी शिष्य
दुर्मुख—राम का गुप्तचर
सुमन्त—चन्द्रकेतु के सारथि और अयोध्या के मन्त्री
सिपाही—चन्द्रकेतु के सैनिक
कंचुकी—द्वारपाल, चोबदार आदि

स्त्री

कौशल्या—राम की माता
अरुन्धती—वशिष्ठ की पत्नी
सीता—जनकदुलारी, राम की पत्नी, लव, कुश की माता
सखी—वन-सहचरी

पहिला दृश्य

[स्थान—अयोध्या का चतुष्पथ ।]

(दो नागरिक दो ओर से आते हैं)

पहिला नागरिक—जय श्रीराम ।

दूसरा नागरिक—जय श्रीराम । अरे भाई, यह क्या बात है कि आज अयोध्या के राजमार्ग-चतुष्पथ-वीथी सुनसान से लग रहे हैं । राक्षसराज रावण का सवंश निधनकर्ता हमारे महाराज श्रीराम के राज्यारोहण के उपलक्ष्य में तो निरन्तर मंगल-वाद्य वजते रहने चाहिए । फिर नगर के चतुष्पथ पर आज कीर्तिगायक चारण-वन्दीगण चुप क्यों हैं ?

पहिला—अजी, तुमने सुना नहीं, महाराज रघुपति ने लंका के युद्ध में मित्रवत् साथ देने वाले वानरपति महात्मा सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण को, तथा राज्यारोहण-समारोह में भेंट-भलाई लेकर आनेवाले ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों को दान-मान से सत्कृत करके अपने-अपने घर लौट-जाने को विदा कर दिया है । इतने दिनों तक उन्हीं सबकी प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में उत्सव हो रहा था ।

दूसरा—अच्छा, तो वे सब गणमान्य राजा-अतिथि विदा हो गए ?

पहिला—अजी, वही क्या, सब राजमाताओं सहित भगवती अरुन्धती और ऋषिवर वशिष्ठ भी राजधानी से चले गए।

दूसरा—कहाँ ? कहाँ ?

पहिला—विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋष्यश्रृङ्ग के आश्रम को। क्या तुम नहीं जानते कि विभाण्डक मुनि के पुत्र ऋष्यश्रृङ्ग राज-जामातृ हैं। राजनन्दिनी शान्ता उन्हीं को तो व्याही हैं।

दूसरा—हाँ, हाँ, सो जानता हूँ। परन्तु राजगुरु महर्षि वशिष्ठ और भगवती अरुन्धती तथा सब राजमाताएँ इस मंगल अवसर पर राजधानी को छोड़कर महात्मा ऋष्यश्रृङ्ग के आश्रम में क्यों गए हैं ?

पहिला—महातपस्वी ऋष्यश्रृङ्ग द्वादस वर्षीय दीर्घ सत्र कर रहे हैं भाई ! दिग्दिगन्त के वेदर्षि, देवर्षि, राजर्षि वहाँ आए हैं।

दूसरा—अच्छा, अब समझा। इसी से आज अयोध्या इस प्रकार सूनी-सूनी सी लग रही है।

पहिला—हाँ भाई ! बस, महाराज रघुमणि राम और आर्य लक्ष्मण ही राजधानी में हैं।

दूसरा—फिर, राजर्षि भरत और आर्य शत्रुघ्न कहाँ हैं ?

पहिला—सुना नहीं तुमने ! कुम्भीनसी-पुत्र लवणासुर से युद्ध करने आर्य शत्रुघ्न मधुपुरी गए हैं और राजर्षि भरत तो राजकाज रत ही हैं।

दूसरा—ठीक है, ठीक है। तो क्या हमारे महाराज रघुमणि राम सत्र में नहीं जाएँगे ?

पहिला—कौन जाने भाई ! (इधर-उधर देखकर) अहा, ये ऋषिवर वशिष्ठ के वटुक शांडिल्प इधर ही आ रहे हैं। इन्हीं से पूछना चाहिये।

[शांडिल्प; ब्रह्मचारी-वेश, नवयुवक, सिर पर बड़ी-सी चोटी, कन्धे पर यज्ञोपवीत। हाथ में दूर्वा और तीर्थोदक।]

पहिला—अभिवादन करता हूँ ब्रह्मचारी जी !

दूसरा—मैं भी महाराज !

ब्रह्मचारी—(दूर्वा से तीर्थोदक छिड़क कर) स्वस्ति-स्वस्ति।

पहिला—ब्रह्मचारिन ! कहिये, हमारे प्रियदर्शी महाराज रघुमणि इस समय कहाँ है ?

ब्रह्मचारी—अहा ! भगवती सीता आज खिन्न हैं। क्योंकि उनके पिता राजर्षि विदेह जनक अपनी अयोनिजा प्रिय पुत्री के प्रेम से कौशल-राजमहालय में रहकर आज विदेह चले गए हैं। इसी से महाराज रघुमणि—सब अतिथियों को विदा कर श्रांतक्लान्त अन्त:पुर में विश्राम करने—और भगवती के चित्त को वहलाने के लिए भगवती सीता के हर्म्य में गए हैं।

पहिला—राजमहिषी भगवती सीता अनलपूत हैं, फिर भी अज्ञानी जन उनके चरित्र में दोष वखानते हैं।

दूसरा—भगवती कुछ दिन राक्षस सदन में रहीं न, इसी से ?

ब्रह्मचारी—शान्तपापं—ऐसा मत कहो। कहीं महाराज के कान तक यह अपवाद पहुँच गया तो अनर्थ हो जायगा। क्या तुम नहीं जानते कि शीघ्र ही अयोध्यावासी मंगल-समारोह करेंगे ?

पहिला—ऐसा क्या शुभ समाचार है ?

दूसरा—कहीं, राजदम्पति की गोद तो भरने वाली नहीं है।

ब्रह्मचारी—बड़ों के पुण्य प्रताप और ऋषियों के आशीर्वाद से ऐसा ही है।

पहिला—अहा, तब तो आनन्द ही आनन्द है!

दूसरा—देवता और पितर कृपा करें।

ब्रह्मचारी—जाऊँ, इस यज्ञपूत तीर्थोदक से भगवती राजमहिषी सीता का मार्जन कर आऊँ। स्वस्तिरस्तु।

(जाता है, दोनों नागरिक भी जाते हैं)

दूसरा दृश्य

[**स्थान**—राजमहालय का पुष्पोद्यान।]

(**समय**—सन्ध्याकाल। सिंह द्वार पर नौबत बज रही है, सीता और राम वार्तालाप कर रहे हैं।)

सीता—महाराज, आज मैं आपसे न बोलूँगी। दिन भर यह दासी आँखें बिछाए बैठी महाराज की बाट देखती रही, और महाराज ने अब दर्शन दिए।

राम—देवी सीते, राजकाज के झंझट तो ऐसे ही हैं। पर तुम्हारे इस दास के प्राण तो सदा तुम्हीं में अटके रहते हैं।

सीता—बातें बनाना तो आर्य-पुत्र खूब जानते हैं। यह राज्य-लक्ष्मी भी प्रेमियों की वैरी है।

राम— इसी से तो राजा सब मनुष्यों से अधिक निरीह कहलाता है।

सीता—यह मैं नहीं जानती। मैं तो निरन्तर आर्यपुत्र का सहवास सान्निध्य चाहती हूँ। तनिक भी दर्शनों में देर होती है तो बीती हुई विरह-व्यथा पीड़ित करने लगती है। आपके शुभ-दर्शन, शुभ्र-हास्य और दिव्यदृष्टि से मुझे जो सुख और तृप्ति मिलती है, वह अकथ्य है। जैसे नेत्रों के आगे से सबकुछ लुप्त हो जाता है। आप ही की भव्य-मूर्ति रह जाती है।

राम—तो प्रिये मैं तो तुम्हारा ही हूँ। तुम मेरे हृदय की रानी-हो। सोते-जागते मिलने में, विरह में तुम्हीं से सदा मेरा हृदय पूर्ण रहता है।

सीता—जानती हूँ आर्यपुत्र! इसी से तो कभी-कभी मैं घबरा जाती हूँ। कहीं विधाता को हमारा यह सुख-सहचर्य असह्य न हो जाय!

राम—अहा, ऐसा क्यों सोचती हो वरिष्ठे! देखो, सरयू के सलिल में स्नातपूत होकर शीतल-मन्द-सुगन्ध बयार हमें कैसा प्रिय सन्देश दे रही है। चन्द्रमा के अमृत को पान कर चकोर कैसा मत्त हो रहा है। यह पत्तों की कोमल मर्मर-ध्वनि, पुष्प-पराग की महक, हमारी इस मिलन-यामिनी पर मुग्ध हैं। देखो तो यह वसुधा आज कैसी मधुमयी दीख रही है!

सीता—वे दिन भी आज याद आते हैं आर्यपुत्र, जब रात इसी भांति चन्द्र-ज्योत्स्ना से उज्ज्वल हो जाती थी और गोदावरी-तट पर की उस पर्णकुटी में मैं आपके सुखद अंक में सो जाती थी।

राम—तो प्रिये, तुम्हें क्या आज इस राजमहालय की अपेक्षा वह पर्णकुटी अधिक प्रिय प्रतीत हो रही है !

सीता—मुझे तो केवल आपका सान्निध्य सुख प्रिय है। राज-महालय हो या पर्णकुटी। जहाँ आपके पावन चरण हैं, स्निग्ध दृष्टि है, स्नेहसिक्त वक्ष है, वही मुझे प्रिय है। मैं तो इन फूलों में, आप ही को देखती हूँ। पत्तों की मर्मर ध्वनि में आपही का कण्ठ-स्वर सुनती हूँ। चन्द्रमा की चाँदनी में आप ही की छवि-माधुरी देखती हूँ।

राम—प्रिये, मैं भी अखिल विश्व को सीतामय देखता हूँ।

सीता—जब मैं लंका में थी, तब एक पल एक युग के समान कटता था। उस समय भी चन्द्रमा इसी तरह आकाश में उदय होता था, तब ऐसा प्रतीत होता था मानो विश्व में आग लग गई है। मलय वायु के स्पर्श से मैं सिहर उठती थी। हृदय में दिन-रात दाह होता था। रात जैसे बीतने ही न पाती थी और प्रत्येक सूर्योदय एक नई निराशा मन में जाग्रत करता था। कोकिल जैसे मेरा उपहास करती थी।

राम—अहा, प्रिये सीते, यही दशा तो मेरी थी ! मलयानिल मेरे शरीर में बर्छियाँ मारता था। मैं वृक्षों से, पर्वतों से, नदियों से, पक्षियों और हिंस्र जन्तुओं से भी तुम्हारा पता पूछता हुआ एक वन से दूसरे वन में, दूसरे वन से तीसरे वन में भटकता फिरता था। हाय, वे दुर्दिन भी कैसे असह्य थे।

सीता—मैं तो अब भी उन दिनों को याद करके भय से काँप उठती हूँ।

राम—अब भय क्या है प्रिये, अब तो तुम मेरे निकट हो। बीती बातों को अब भूल जाओ।

सीता—चाह कर भी नहीं भूल पाती हूँ। न जाने क्यों, मेरा मन उन्हीं दुर्दिनों की ओर दौड़ जाता है। आर्यपुत्र घड़ी भर के लिए भी मेरी आँखों से ओट होते हैं तो मैं व्याकुल हो जाती हूँ।

राम—भीरु, यह शङ्का अपने मन से दूर करो। अरे, रोने लगीं। तुम्हारी आँखें डबडबा आईं। लाओ, मैं तुम्हारे आँसू पोंछ दूँ।

सीता—सब माताएँ और गुरुचरण भी तो राजधानी से चले गए। आज पितृ-चरणों ने भी मुझ से मुँह मोड़ लिया। अब तो केवल आप ही मेरे प्राणाधार रह गए। न जाने कैसा सूना-सूना लग रहा है।

राम—धीरज धरो जनक-नन्दिनी! गुरुजन हमें छोड़ थोड़े ही सकते हैं। पर कर्तव्यवश तो सब कार्य करने पड़ते ही हैं।

सीता—आर्यपुत्र, मैं जानती हूँ। पर प्रिय बन्धुओं का विछोह मुझसे सहा नहीं जाता।

राम—प्रिये, यही हृदय के मर्म को छेदने वाले संसार के झंझट हैं, जिनसे घबराकर लोग वन की शरण लेते हैं।

(कंचुकी आता है)

कंचुकी—रामचन्द्र (रुककर) महाराज!

राम—(मुस्कुराकर) आर्य, आप मेरे पिता के परिजन हैं, आपके मुँह से मेरे लिए रामभद्र शब्द यही अच्छा लगता है। सो अपने अभ्यास के अनुसार ही कहिये।

कंचुकी—महाराज की जय हो। मुनिवर के आश्रम से अष्टावक्र मुनि आये हैं।

राम—तो आर्य, उन्हें आने देने में विलम्ब क्यों हो! हाँ, उन्हें विधिवत आर्घ्यपाद्य सत्कृत करके ले आओ।

कंचुकी—जो आज्ञा! [कंचुकी जाता है]

[अष्टावक्र आते हैं]

राम—मैं राम आपको अभिवादन करता हूँ।

सीता—मैं जनक-सुता सीता आपको अभिवादन करती हूँ।

अष्टावक्र—जय हो महाराज रघुमणि! कल्याण हो भगवती महिषी जनक-नन्दिनी!

राम—यह आसन है, विराजिए!

सीता—कहिये, ऋषिवर, हमारी सास और ननद शान्ता प्रसन्न तो हैं।

राम—सोमपान करने वाले हमारे बहनोई ऋष्यशृङ्ग और आर्या शान्ता विघ्न रहित तो हैं!

अष्टावक्र—(बैठकर) सब भाँति कुशल-मंगल हैं।

सीता—हमें कभी याद भी करते हैं?

अष्टावक्र—देवि, भगवान् वशिष्ठ ने कहा है कि आप अयोनिजा भूमि-सुता हैं जो जगत का भार धारण करती है। आपके पिता विदेह जनक राजर्षि हैं और प्रतापी सूर्यकुल की आप वहू हैं जिसके हम कुलगुरु हैं। इस प्रकार आप सब भाँति भाग्य-शालिनी हैं। अब आप वीर माता बनें, यही हमारा आशीर्वाद है।

सीता—भगवान् वशिष्ठ के हम अनुग्रहीत हुए।

राम—साधुजनों के वचन सार्थक होते हैं। उनसे धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की सिद्धि होती है।

अष्टावक्र—भगवती अरुन्धती और शान्तादेवी ने वारम्वार यह सन्देश कहला भेजा है कि गर्भिणी अवस्था में भगवती सीता की जो कुछ साध हो वह विना विलम्ब तुरन्त पूरी करना।

राम—ऐसा ही होगा।

अष्टावक्र—और भगवती सीता के ननदोई मुनिवर ऋष्यशृङ्ग ने देवी के पास यह संदेश भेजा है, कि देवी के पूरे महीने चल रहे हैं, इसलिए यहाँ आने का कष्ट आपको नहीं दिया गया और रामभद्र को भी आपके चित्त-विनोदार्थ छोड़ दिया गया है। सो जब आपकी गोद पुत्र से सुशोभित होगी, तब हमहीं आकर भेंट करेंगे।

राम—(हर्ष और लाज से) वहुत ठीक है। भगवान् वशिष्ठ की क्या आज्ञा है।

अष्टावक्र—महर्षि ने कहा है कि हम तो यहाँ यज्ञ में फँसे हैं। आप वहाँ शिशु राजकुमार को प्राप्त करके सन्तानवत् प्रजा का पालन करिये, जिससे संसार में आपकी यश-वृद्धि हो।

राम—जैसी भगवान भैया वशिष्ठ की आज्ञा। उनसे कहना कि जनमन के अनुरंजन के लिए मैं राज्य और प्राणाधिक जानकी को भी त्यागने में आगा-पीछा न करूँगा।

सीता—इसीलिए तो आर्यपुत्र रघुवंशमणि कहाते हैं।

राम—अरे, सेवकों में कौन यहाँ उपस्थित हैं?

सेवक—(आकर) महाराज की जय हो। दास उपस्थित है। क्या आज्ञा होती है ?

राम—भद्र, मुनि अष्टावक्र को लेजाकर विधिवत अर्चना से सत्कृत कर विश्राम कराओ।

सेवक—जो आज्ञा महाराज !

[सेवक और अष्टावक्र जाते हैं]

राम—(सीता से) प्रिये, अब हमारी जन्मभर की आस पूरी होगी। कब वह दिन आएगा जब मैं लाल को अपने हाथों खिलाऊँगा ?

सीता—बहुत जल्द आर्यपुत्र !

राम—सीते, कहो, मैं आज तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ?

सीता—आर्यपुत्र, आपका प्यार संसार की सबसे बड़ी वस्तु है। जब वही मुझे मिला हुआ है तो अब मुझे और क्या चाहिये ?

राम—धन्य सीता देवी। इसी से लोग तुम्हें प्रियंवदा कहते हैं। (देखकर) अरे, लक्ष्मण आ रहे हैं।

[लक्ष्मण हाथ में कुछ लिये आते हैं]

सीता—देवरजी, यह क्या लाए हो ?

लक्ष्मण—महाराज की जय हो। देखिए भाभी, कैसे अच्छे चित्र बने हैं। इनमें हमारे सम्पूर्ण जीवन की कथा आ गई।

राम—वत्स लक्ष्मण, देवी के मन को रिझाने के तुम्हें खूब ढङ्ग आते हैं। देखें, कैसे चित्र हैं ? अरे, यह तो जनकपुरी की छवि है !

सीता—अहा ! नये फूले हुए कमल जैसे महाराज, कैसे चुपचाप महात्मा विश्वामित्र के पास खड़े हैं और देवरजी भी

कैसे सलोने बने हैं। देखिए ! पिताजी अचरज में भरकर आपका रूप निहार रहे हैं।

लक्ष्मण—देखिए भाभी, यह गुरु वशिष्ठ की आपके पिता पूजा कर रहे हैं, विवाह का मण्डप सजा है। राजा, रानी, ऋषि, मुनि, देव, गन्धर्वों की भीड़ लगी है। यह आप हैं, यह भाभी माण्डवी हैं, यह बहू श्रुतिकीर्ति हैं।

सीता—देवरजी, यह चौथी कौन है ?

लक्ष्मण—उसे जाने दीजिए। यह देखिए, परशुराम जी हैं ?

सीता—मैं डर गई।

राम—(दूसरी ओर देखकर) अरे ! यह तो अयोध्या की उस समय की छवि है, जब हम विवाह करके लौटे थे। कैसी आनन्द-बधाइयाँ बज रही हैं।

सीता—आह ! महाराज की आँखों में आँसू क्यों आ गए ?

राम—देवी ! पिताजी की छवि देख उनके चरणों की याद आ गई। हाय, वे चरण अब कहाँ ?

लक्ष्मण—यह मन्थरा और मझली माता हैं ?

राम—(दूसरा चित्र देखकर) अहा, इस चित्र में गंगा की धारा कैसी बह रही है, ऋषियों के आश्रम कैसे भले मालूम देते हैं !

लक्ष्मण—धन्य महाराज, आपने मझली माँ का चित्र तो देखा भी अनदेखा कर दिया।

राम—उसे जाने दो भाई। यह, देखो। चित्रकूट की राह में यही वह बड़ का पेड़ है, जिसे भरद्वाज मुनि ने बताया था। देखो, यमुना के जल में इसकी परछाईं कैसी काँपती हुई-सी दीख रही है।

सीता—क्या आर्यपुत्र को अभी तक इसकी स्मृति बनी है ?

राम—भला, इसे मैं भूल सकता हूँ क्या ? इसी के नीचे बैठकर तो मैंने तुम्हारे पैरों से काँटा निकाला था, और तुमने भी अपने आँचल से मेरे मुँह का पसीना पोंछा था। अरे, देवी ! तुम रोने क्यों लगीं ?

सीता—महाराज, उस दुख में भी कैसा सुख था ? राज्य का यह बोझ तो जैसे हमें दबा डालता है। महाराज, मेरे मन में एक साध हुई है।

राम—कैसी साध देवी ?

सीता—मैं चाहती हूँ कि एक बार फिर वन में विहार करू और जङ्गल में नदी के जल में किलोलें करूँ। अहा ! वे दिन भी कैसे प्यारे थे, जब चाँदनी रात में गोदावरी के किनारे हमारी कुटिया थी, फूल हमें देखकर हँसते थे; हवा हमसे अठखेलियाँ करती थी, तारे हम पर झाँक-झाँककर मुसकराते थे, चम्पा और चमेली की कलियों से भरी डालें झूम-झूमकर हमें पास बुलाती थीं।

राम—सीते ! राजमहल के ये महाभोग पाकर भी आज तुम्हें उनकी याद आ रही है ?

सीता—महाराज ! यह राजमहल, गहने, हीरे, मोती, दास, दासी, जैसे हमारे ऊपर बोझ हैं। तब हम और आप बिल्कुल पास-पास थे।

राम—और अब ?

सीता—अब राजनीति हमारे आपके बीच आ गई है। महाराज, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग पल-पल में दूर हो रहे हैं। वहाँ हम एक थे, यहाँ आते ही दो हो गए। आप हो गये राजा, मैं हो गई रानी। राजकाज

आपको न जाने कहाँ-कहाँ खींच ले जाता है और इस अवरोध के भीतर मैं हीरे-मोतियों की श्रृंखला से बंधी पड़ी रहती हूँ।

राम—प्रिये। ऐसा क्यों सोचती हो?

सीता—आर्यपुत्र। एक पल को भी आप से दूर रहने पर मेरा दिल धड़कने लगता है।

राम—सीते, मैंने बड़े कष्ट से तुम्हें पाया है। अब मैं तुम्हें सदा हृदय में रक्खूँगा।

सीता—तो चलिए आर्यपुत्र, एक वार फिर वन का आनन्द उठाया जाय, ऋषियों का दर्शन करके उनका आशीर्वाद लिया जाय।

राम—(हँसकर) ऐसी ही इच्छा है तो लक्ष्मण कल ले जाकर तुम्हारा वन-विहार करा लाएँगे। प्रिये।

सीता—और आप?

राम—तुम तो कह ही चुकी हो कि राजा को विश्राम कहाँ। भाई लक्ष्मण, कल भोर होते ही रथ जोतकर देवी को गङ्गातीर के ऋषियों का दर्शन करा लाओ।

लक्ष्मण—जो आज्ञा महाराज!

सीता—महाराज मैं ऋषियों के पुनीत आश्रमों [illegible] आडम्बर से नहीं जाऊँगी। सेना परि[illegible] आवश्यकता नहीं है, अकेले देवरजी ही [illegible]

राम—[illegible] युक्तियुक्त भी है। ऐसा ही होग[illegible] तुम शयन-कक्ष में जाकर विश्राम[illegible] काज निपटा कर अभी आता [illegible]

सीता—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा ।

[जाती है]

राम—लक्ष्मण, तुम देवी की रुचि के अनुकूल ही व्यवस्था करना । जाओ, रथ तैयार करने की आज्ञा दे दो ।

लक्ष्मण—जैसी महाराज की आज्ञा !

[जाता है]

तीसरा दृश्य

[**स्थान**–राजमहल ।]

(**समय**—संध्याकाल । राम अकेले टहलते हुए ।)

राम—अहा, प्रिया सीता मुझे स्वभाव ही से प्राणों से प्रिय है, वह प्रिय-भाव उसने अपने गुणों से और बढ़ा दिया है । भाग्य ही से मुझे ऐसी पत्नी मिली है और भाग्य ही से कौशल-राज को ऐसी महिषी । अब उसके गर्भ से कौशल राजवंश का वंशधर अधिकारी का जन्म होगा, जिससे मेरा और मेरे पूर्वजों का यश बढ़ेगा ।

[प्रतिहारी आती है]

प्रतिहारी—महाराजाधिराज की जय हो ।

राम—अरी शुभे, क्या कोई समाचार है ?

प्रतिहारी—महाराज का चर दुर्मुख द्वार पर उपस्थित है, दर्शनों के लिए निवेदन करता है ।

राम—क्यों नहीं, वह राजकाज में नियुक्त है। अच्छा, उसे यहीं भेज दो।

प्रतिहारी—जो आज्ञा महाराज।

[जाती है]

[दुर्मुख आता है]

दुर्मुख—महाराज की जय हो!

राम—कहो भाई, नगर का क्या समाचार है?

दुर्मुख—सब नगर-निवासी सुखी हैं, वे महाराज की जय-जयकार मानते हैं।

राम—वे क्या कहते हैं, विस्तार से कहो।

दुर्मुख—कहते हैं, महाराज ने अपने गुणों से स्वर्गवासी महाराज दशरथ को भुला दिया।

राम—अरे भाई, यह तो प्रशंसा हुई। कुछ हमारी बुराइयाँ भी तो बताओ!

दुर्मुख—महाराज!

राम—कहो, निर्भय कहो।

दुर्मुख—कैसे कहूँ महाराज?

राम—कहो भाई, तुम्हारी राज-सेवा यही है कि जो कुछ सुनो, सच-सच अपने राजा से कहो।

दुर्मुख—तो सुनिए महाराज! (रोने लगता है)

राम—अरे, तुम रोते हो, ऐसा क्या समाचार है?

दुर्मुख—महाराज मुझे बन्दी कर लीजिए। मैं चर का काम नहीं कर सकता। (पैरों में लोट जाता है)

राम—कहो। सबकुछ निर्भय कहो।

दुर्मुख—नगर का धोबी है न!

राम—धोबी! उसे क्या दुःख है?

दुर्मुख—उसकी स्त्री बिना उससे कहे पीहर चली गई थी।

राम—उसे पति की आज्ञा लेनी चाहिए थी।

दुर्मुख—महाराज, जब वह लौटकर दूसरे दिन आई तो धोबी ने उसे बहुत पीटा।

राम—बड़ा बुरा किया। स्त्री को पीटना…।

दुर्मुख—और कहा…

राम—क्या कहा ?

दुर्मुख—महाराज कैसे कहूँ ?

राम—कहो, क्या कहा ?

दुर्मुख—कहा, क्या मुझे भी राम समझ लिया है कि जिसने राक्षस के घर में रही स्त्री को घर में रख लिया है।

राम—आह, यह कहा !

दुर्मुख—महाराज, दास का अपराध क्षमा हो।

राम—तुम्हारा दोष नहीं है ? अच्छा तुम जाओ।

[रोता हुआ जाता है]

राम—(स्वगत) अरे हृदय, तू फट जा। साध्वी सीता अब जन-जन की आलोचना की वस्तु हो गई। अरे, अयोध्या-वासियो, मैंने तो सदा तुम्हारी मनचाही की, कभी धर्म न छोड़ा। अब तुम साध्वी सीता को मुझसे अलग किया चाहते हो ! मेरी पसलियाँ तोड़ लो, मेरी नस-नस खींच लो, पर मेरी सती सीता को, महाभागी जनक-दुलारी को, अयोध्या की राजलक्ष्मी को मुझसे दूर न करो। अरे ! तुम सीता को मुझसे अधिक क्या जानते हो ? अथवा मुझे ही तुम नीच समझते हो ! नहीं, मैंने सदा अपनी बलि दी और अब सबसे बड़ी बलि दूँगा। प्रजा के लिए गर्भवती सीता को त्याग दूँगा। हाय ! वह राजप्रासाद में मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। प्रातःकाल

वह उमङ्ग में भरी गङ्गा-तीर जायगी, पर फिर वहाँ से लौटकर न आएगी। सीते, अरी जनक की दुलारी, तेरा भाग्य कैसा है? पापी राम की स्त्री बनने का फल पा। हाय रे राजधर्म! (रोते हैं। फिर आँसू पोंछकर) अरे हृदय, पत्थर का बन। मैं प्रजा का अपवाद नहीं सुन सकता। अच्छा, मैंने अपनी प्राणाधिक निरपराध सीता को त्यागा, जिसे ढूंढ़ते हुए लंका तक गया, समुद्र का पुल बांधा और जिसके लिए रावण को मारा। (पुकार कर) पहरे पर कौन है?

[द्वारपाल आता है]

द्वारपाल—महाराजाधिराज की जय हो। सेवक उपस्थित है।

राम—देखो, भाई लक्ष्मण को अभी भेज दो।

कंचुकी—जो आज्ञा महाराज।

[जाता है]

राम—(स्वगत) राजा, राजा, यह राजपद सोने की वेड़ी है। यह सिंहासन विष का भरा प्याला है। राजा एक ऊंचे पहाड़ की चट्टान है, जिसकी ऊँचाई से लोग डाह करते हैं; जो गर्मी में अकेला तपता है और जाड़ों में वर्फ में ठिठुरता है। अब समझा, राजा बनने के लिए मनुष्य की आत्मा नहीं राक्षस की आत्मा चाहिये। (लक्ष्मण के आने की आहट पाकर) कौन है? भाई लक्ष्मण, यहाँ आओ, और निकट मेरे सुख-दुःख के साथी भाई? अरे वीर।

[फूट-फूट कर रोते हैं]

लक्ष्मण—अरे! किसने महाराज को दुःखित किया? सेवक के रहते कौन महाराज को दुःखी कर गया? देव, गन्धर्व,

राम—गङ्गा के उस पार...

लक्ष्मण—भगवान वाल्मीकि के आश्रम में...

राम—नहीं, नहीं। आश्रम के पास, देवी सीता को छोड़ आओ।

लक्ष्मण—छोड़ आऊँ ?

राम—हाँ।

लक्ष्मण – क्यों महाराज ?

राम—यह राजाज्ञा है।

लक्ष्मण—महाराज !

राम—अब कुछ मत पूछो लक्ष्मण !

लक्ष्मण—क्या महाराज ने देवी सीता को त्याग दिया ?

राम—हाँ।

लक्ष्मण—उनका अपराध ?

राम—यह न पूछो।

लक्ष्मण—महाराज, आप गर्भवती महारानी को त्याग रहे हैं ?

राम—मैं आज्ञा दे चुका लक्ष्मण !

लक्ष्मण—दुहाई महाराज की, मैं विद्रोह करूँगा।

राम—राजाज्ञा हो चुकी, तुम्हें इसका पालन करना होगा !

लक्ष्मण—महाराज, मुझे मार डालिए।

राम—लक्ष्मण, राजाज्ञा का पालन करो !

लक्ष्मण—महाराज !

राम—जाओ वत्स ! सूरज निकलने से पहले। समझ गए न !

लक्ष्मण—(छाती में घूँसा मार कर) सूरज निकलने से पहले, मैं मर जाऊँ तो अच्छा।

[रोते हुए जाते हैं]

———

राक्षस और मनुष्य जो अपराधी होगा, उसे मैं जीता न छोड़ूँगा। अरे, महाराज मूर्छित हो गए। दौड़ो···

राम—(होश में आकर) नहीं, भैया, मैं अच्छा हूँ। वत्स, लक्ष्मण अधीर मत होना।

लक्ष्मण—महाराज क्या कह रहे हैं ?

राम—हाँ, ठीक है। तनिक सहारा देकर बिठा दो भाई ! तुम क्या कहते हो लक्ष्मण, राजा न किसी का भाई, न पति। क्यों ?

लक्ष्मण—क्यों महाराज ?

राम—वत्स लक्ष्मण, तुम मुझे सदा महाराज ही कहते हो। भैया नहीं कहते !

लक्ष्मण—आप महाराज तो हैं ही।

राम—अच्छी बात है। तो लक्ष्मण, एक राजाज्ञा है।

लक्ष्मण—कौनसी आज्ञा ?

राम—बिना विलम्ब पालन करना होगा।

लक्ष्मण—जो आज्ञा महाराज।

राम—सुनो।

लक्ष्मण—कहिए।

राम—कल सूरज निकलने से पहिले देवी सीता को···

लक्ष्मण—वन ले जाना होगा ?

राम—हाँ, गङ्गा के उस पार—ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में···

लक्ष्मण—यह आज्ञा तो सुन चुका हूँ महाराज !

राम—वह राजाज्ञा नहीं थी लक्ष्मण, वह तो पत्नी की विनोद-इच्छा पति ने पूरी की थी।

लक्ष्मण—और यह ?

राम—सुनो।

लक्ष्मण—कहिये।

राक्षस और मनुष्य जो अपराधी होगा, उसे मैं जीता न छोड़ूँगा। अरे, महाराज मूर्छित हो गए। दौड़ो...

राम—(होश में आकर) नहीं, भैया, मैं अच्छा हूँ। वत्स, लक्ष्मण अधीर मत होना।

लक्ष्मण—महाराज क्या कह रहे हैं?

राम—हाँ, ठीक है। तनिक सहारा देकर बिठा दो भाई! तुम क्या कहते हो लक्ष्मण, राजा न किसी का भाई, न पति। क्यों?

लक्ष्मण—क्यों महाराज?

राम—वत्स लक्ष्मण, तुम मुझे सदा महाराज ही कहते हो। भैया नहीं कहते!

लक्ष्मण—आप महाराज तो हैं ही।

राम—अच्छी बात है। तो लक्ष्मण, एक राजाज्ञा है।

लक्ष्मण—कौनसी आज्ञा?

राम—बिना विलम्ब पालन करना होगा।

लक्ष्मण—जो आज्ञा महाराज।

राम—सुनो।

लक्ष्मण—कहिए।

राम—कल सूरज निकलने से पहिले देवी सीता को...

लक्ष्मण—वन ले जाना होगा?

राम—हाँ, गङ्गा के उस पार—ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में...

लक्ष्मण—यह आज्ञा तो सुन चुका हूँ महाराज!

राम—वह राजाज्ञा नहीं थी लक्ष्मण, वह तो पत्नी की विनोद-इच्छा पति ने पूरी की थी।

लक्ष्मण—और यह?

राम—सुनो।

लक्ष्मण—कहिये।

राम—गङ्गा के उस पार···

लक्ष्मण—भगवान बाल्मीकि के आश्रम में···

राम—नहीं, नहीं। आश्रम के पास, देवी सीता को छोड़ आओ।

लक्ष्मण—छोड़ आऊँ ?

राम—हाँ।

लक्ष्मण—क्यों महाराज ?

राम—यह राजाज्ञा है।

लक्ष्मण—महाराज !

राम—अब कुछ मत पूछो लक्ष्मण !

लक्ष्मण—क्या महाराज ने देवी सीता को त्याग दिया ?

राम—हाँ।

लक्ष्मण—उनका अपराध ?

राम—यह न पूछो।

लक्ष्मण—महाराज, आप गर्भवती महारानी को त्याग रहे हैं ?

राम—मैं आज्ञा दे चुका लक्ष्मण !

लक्ष्मण—दुहाई महाराज की, मैं विद्रोह करूँगा।

राम—राजाज्ञा हो चुकी, तुम्हें इसका पालन करना होगा !

लक्ष्मण—महाराज, मुझे मार डालिए।

राम—लक्ष्मण, राजाज्ञा का पालन करो !

लक्ष्मण—महाराज !

राम—जाओ वत्स ! सूरज निकलने से पहले। समझ गए न !

लक्ष्मण—(छाती में घूँसा मार कर) सूरज निकलने से पहले, मैं मर जाऊँ तो अच्छा।

[रोते हुए जाते हैं]

चौथा दृश्य

[**स्थान**—राजदम्पति का शयनागार। राम शैया पर अधोमुख लेटे हैं। सीता उनकी बाँह पर सिर रखकर सो रहीं हैं।]

(**समय**—उषःकाल।)

राम—(स्वगत)अहा, जिस देवी को अग्नि ने शुद्ध किया, और जिसके गर्भ में पवित्र रघुकुल का उत्तराधिकारी है, उसे मैं एक नगण्य प्रजाजन के अपवाद से त्याग रहा हूँ। हा, पर मन्दिर-वास का दूषण मैथिलि के भाल से टल नहीं सका। अग्नि-परीक्षा होने पर भी प्रवाद नहीं गया। अब मैं भाग्यहीन क्या करूँ अथवा अपना यह अभिशप्त जीवन त्याग दूँ! किन्तु मैंने तो जनमन-अनुरञ्जन का व्रत ग्रहण किया है। व्रत-पालन करने में ही पितृ-चरण ने प्राण दिए। मैं राम उनका पुत्र क्या ऐसा अधम हूँ कि व्रत-भङ्ग करूँगा? अरे, अभी ही तो भगवान् वशिष्ठ ने सन्देश भेजा है। अहा, क्या मेरे कारण से यह हमारा पवित्र इक्ष्वाकु-कुल दूषित होगा? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकेगा। हा मैथिलि, अयोनिजा निष्पाप भूमि-कुमारी, अपने जन्म से संसार को प्रसन्न करने वाली, विदेह जनक की नेत्रज्योति, भगवति अरुन्धति और वशिष्ठ द्वारा प्रशंसित चरित्र। हा, राम की प्राणप्रिया, अरी महावन की संगिनी, सखी, प्राणाधिक प्रिया, मृदुभाषिणी, तेरा ऐसा भाग्य? अरी, तूने संसार को पवित्र किया, तो भी मनुष्य तेरे प्रति अपवित्र बात कहते हैं! अरी, समाज को सनाथ करने वाली मुझ अभाग्य पति के रहते तू आज अनाथ होने वाली है। हाय, हाय, यह निष्पाप तो सुख से मेरी बाँह का सहारा लिए सो

रही है। नहीं, जानती, मैं क्रूर कर्म पति हूँ। अस्पर्श्य हूँ, तो क्यों अपने स्पर्श से इस पवित्रात्मा को अपवित्र करूँ? (धीरे से बांह सिर के नीचे से निकाल लेते हैं। बाहर जाकर) अरे, कौन सेवक उपस्थित है?

(दुर्मुख आता है)

दुर्मुख—महाराज की जय हो, आर्य लक्ष्मण की आज्ञा से मैं राजाज्ञा पालन के लिए उपस्थित हूँ।

राम—हाय, जीव-लोक पलट गया, राम का जन्म लेने का प्रयोजन भी पूरा हो गया। संसार विदग्ध वन के समान सूना हो गया। संसार में कुछ सार न रहा। (दोनों हाथों से सिर पकड़ कर रोते हैं) हा, माता अरुन्धती; हा, भगवान् वशिष्ठ; हा, मुनि विश्वामित्र; हा, अग्निदेव, हा, पिता जनक; हा, पिता दशरथ; हा, माता; हा, उपकारी मित्र लंकेश विभीषण; हा, प्रिय सखा सुग्रीव; हा मारुति; हा त्रिजटे; इस वंचक अधम राम ने तुम सबको ठग लिया। अथवा अब यह राम तुम्हें मुँह दिखाने योग्य न रहा। हा, हा, हा, हा। अरी भोली सीते, तू विश्वास करके मेरे अङ्क में निश्चिन्त सो गई, सो मैं वंचक निर्दयी तुझे चुपचाप सोती छोड़कर चोर की भाँति बाहर निकल आया। भला कौन पति विश्व में ऐसा निर्दयी होगा जो आसन्न प्रसवा निष्पाप पत्नी को वनचरों के बीच छोड़ दे। हा, हा!

दुर्मुख—महाराज, सेवक राजाज्ञा की बाट जोह रहा है।

राम—जा भद्र, राजाज्ञा पालन कर, राजाज्ञा हो चुकी। (कुछ रुक कर) हा, देवी सीते तुम कैसे जीवित रहोगी। भगवती वसुन्धरे, अपनी पुत्री की रखवाली करना। तुम्हीने

जनक और रघुकुल की वंश-उजागरी सीता को जन्म दिया था।

[जाते हैं]

सीता—(जागकर) सौम्य आर्यपुत्र, कहाँ हो ! हा, धिक-धिक, दुःस्वप्न के धोखे में मैं आर्यपुत्र का नाम लेकर चिल्ला उठी। (देखकर) अरे, सचमुच ही मुझ अकेली को सोती छोड़कर आर्यपुत्र चले ही गए। यह राजकाज भी व्यसन है। इस बार यदि उन्हें देखकर अपने वश में रह सकी तो अवश्य कोप करूँगी। (पुकारकर) कौन सेवक यहाँ उपस्थित है।

ख—(आगे बढ़ कर) यह सेवक है महारानी ! राज महिषी की जय हो। आर्य लक्ष्मण प्रार्थना करते हैं कि रथ प्रस्तुत है, सो देवी चलकर उस पर चढ़ें।

सीता—अच्छा भद्र, ठहर, गर्भभार से मैं शीघ्र नहीं चल सकती, धीरे-धीरे चलूँगी।

दुर्मुख—इधर से आइये देवी, इधर से।

सीता—तपस्वी जनों को प्रणाम, रघुकुल के देवताओं को प्रणाम। आर्यपुत्र के चरण कमल में प्रणाम—मैं सब गुरुजनों को प्रणाम करती हूँ। चल भद्र, रथ किधर है ?

दुर्मुख—इधर से देवि, इधर से।

(दोनों जाते हैं)

———

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—वन में गंगा के किनारे वाल्मीकि-आश्रम के पास सीता और लक्ष्मण ।]

(समय—मध्याह्न)

सीता—लक्ष्मण, आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ ।

लक्ष्मण—हाँ, भाभी ।

सीता—पर तुम तो बड़े उदास हो !

लक्ष्मण—क्या मैं ? नहीं तो। अब, उतरिए। महात्मा वाल्मीकि का आश्रम आ गया ।

सीता—क्या सच ? अहा ! ऋषि के दर्शन करके आज आँखें सफल होंगी ।

लक्ष्मण—हाँ, भाभी ।

सीता—उधर एकटक तुम क्या देख रहे हो ? देखो, गंगा कलकल करती बह रही है ।

लक्ष्मण—हाँ, भाभी ।

सीता—और ऋषियों की कुटियों से होम का धुआँ कैसा उठ रहा है ? ब्रह्मचारी वेदपाठ कर रहे हैं। उनकी ध्वनि कैसी प्यारी लग रही है ?

लक्ष्मण—हाँ, भाभी !

सीता—मैं आज गंगा में खूब विहार करूँगी। सुन रहे हो न लक्ष्मण ?

लक्ष्मण—हाँ, भाभी ।

सीता—अरे ! तुम किस सोच में खड़े हो वत्स ? आओ, इस पत्थर पर थोड़ा बैठकर आराम लें ।

लक्ष्मण—भाभी, अब मैं जाऊँगा ।

सीता—जाओगे ? कहाँ जाओगे ?

लक्ष्मण—अयोध्या को।

सीता—अयोध्या को ?

लक्ष्मण—हाँ भाभी।

सीता—वाह ! देवरजी। आए देर न हुई कि अभी जाओगे। मैं तो आज दिनभर वन में विहार करूँगी। वाह ! भला, वन का यह सौन्दर्य महलों में कहाँ !

लक्ष्मण—यहाँ आपका मन लग जायगा भाभी ?

सीता—मुझे बहुत अच्छा लग रहा है, पर एँ ! यह दाहिनी आँख क्यों फड़क रही है ?

[illegible]—भाभी, महात्मा वाल्मीकि के आश्रम की सीधी राह यह है।

सीता—देख तो रही हूँ परन्तु हम वहाँ गंगा स्नान करके चलेंगे।

लक्ष्मण—तो भाभी, मुझे आज्ञा दीजिए !

सीता—कैसे अच्छे फल खिले हैं ! कैसी भीनी महक फैल रही है, देवरजी !

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—हम महाराज के लिए बहुत से फूल ले चलेंगे।

लक्ष्मण—भाभी, अब मैं जाऊँगा।

सीता—कहाँ देवरजी ?

लक्ष्मण—अयोध्या को।

सीता—अभी हम नहीं चलेंगे।

लक्ष्मण—पर मैं जाऊँगा, भाभी !

सीता—और मैं ?

लक्ष्मण—आप यहीं रहेंगी।

सीता—मैं ?

लक्ष्मण– हाँ, भाभी।

सीता—अकेली ?

लक्ष्मण—महात्मा वाल्मीकि का आश्रम तो पास ही है।

सीता—तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?

लक्ष्मण—महाराज की आज्ञा है।

सीता—महाराज की आज्ञा है !

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—क्या आज्ञा है ?

लक्ष्मण–कैसे कहूँ भाभी !

सीता—कहो, लक्ष्मण ! मैं आज्ञा देती हूँ।

लक्ष्मण—महाराज की यही आज्ञा है कि देवी सीता को वन में महात्मा वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ आओ।

सीता—छोड़ आओ ? आह !

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—किस लिए ?

लक्ष्मण—मैं नहीं जानता।

सीता—महाराज ने क्या दासी को त्याग दिया ?

लक्ष्मण—मैं नहीं जानता।

सीता—तो तुम मुझे इस वन में अकेली छोड़कर चले जाओगे ?

लक्ष्मण—महाराज की आज्ञा है।

सीता—अकेली वन में छोड़ जाने की ? मुझ गर्भिणी को ?

लक्ष्मण—देवी, विपत् में धैर्य ही रक्षा करता है।

सीता—तो आर्यपुत्र के दर्शन अब न हो सकेंगे ?

लक्ष्मण—कैसे कहूँ ?

सीता—अयोध्या के वे राजमहल, आर्यपुत्र की वे प्यारी बातें, इतनी जल्दी स्वप्न हो जायँगी ?

लक्ष्मण—भाभी, मेरा हृदय फटा जा रहा है।

सीता—रोते हो वत्स लक्ष्मण ! छि: !!

लक्ष्मण—भाभी !

सीता—जाग्रो तुम ग्रयोध्या को। ग्रार्यपुत्र से कहना...

लक्ष्मण—क्या ?

सीता—कहना, ग्रभागिनी सीता ने कहा है कि जब पहिले राज्य-लक्ष्मी ग्रापकी गोद में ग्राई थी, तब मैं ग्रापको वन में ले भागी थी। ग्रब राजलक्ष्मी की बारी है कि उसने मुझे ग्रापसे दूर करके वन में भगा दिया है। इसमें ग्रापका दोष नहीं; मेरे भी भाग्य का दोष है। मैं ग्रापके बिना कभी न रहती, तुरन्त प्राण त्याग देती। पर ग्रापका तेज मेरे शरीर में है। इसलिए पुत्र के जन्म लेने तक मैं सूर्य में दृष्टि लगाकर तप करूँगी कि जिससे फिर मुझे ग्राप ही पति मिलें।

लक्ष्मण—धन्य भाभी ! ग्रब मैं जाऊँ ?

सीता—जाग्रो वत्स, ग्रार्यपुत्र से कहना, सीता के सब ग्रपराध क्षमा हों !

लक्ष्मण—भाभी, मेरा मन हाहाकार कर रहा है।

सीता—देवर, राजधर्म बड़ा कठोर है ग्रौर भाग्य उससे भी ग्रधिक। जाग्रो !

लक्ष्मण—हा, भाभी !

[मूर्छित हो जाते हैं]

सीता—ग्ररे, मूर्छित होकर गिर गए ! ग्रब मैं क्या करूँ ?

लक्ष्मण—(होश में आकर) नहीं, भाभी। मैं ग्रब ठीक हो गया। जाता हूँ।

सीता—जाग्रो, तुम्हारा मार्ग शुभ हो वत्स।

लक्ष्मण—भाभी, वन के देवता तुम्हारी रक्षा करें। अभिवादन करता हूँ।

सीता—(आँसू भरकर) सुखी रहो। सुनो, आर्य पुत्र के चरणों में प्रणाम कह देना।

लक्ष्मण—अच्छा।

सीता—मेरी सब दासियों और सखियों को ये मेरे सब गहने, जिन्हें जो पसन्द करें, बाँट देना। अब इन्हें मेरे पहनने के दिन बीत चुके।

लक्ष्मण—अच्छा।

सीता—उनसे कहना—मेरे मोर और सुग्गों को ठीक समय दाना पानी देते रहें।

लक्ष्मण—अच्छा।

सीता—आर्यपुत्र से कहना, मेरे उस हिरन के बच्चे को सदा प्यार करते रहें। हाय! उसे तो बिना मेरी गोद के कहीं एक पल चैन ही नहीं पड़ता था।

लक्ष्मण—अच्छा भाभी।

सीता—लक्ष्मण। सब बहुओं को असीस देना, वे सदा सुहागिन रहें।

लक्ष्मण—अच्छा।

सीता—अब जाओ तुम वत्स लक्ष्मण!

लक्ष्मण—मैं चला भाभी।

[जाते हैं]

सीता—गये, तेज और विनय के अवतार, बड़े भाई की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा मानने वाले यती लक्ष्मण, जिन्होंने अपनी इच्छा से चौदह वर्ष वन में नींद और भूख को जीतकर हमारी सेवा की, जिन्होंने कभी आँख उठाकर

मेरी ओर नहीं देखा। धन्य लक्ष्मण, धन्य देवर। तुम-सा देवर, तुम-सा भाई जगत में न हुआ न होगा। जाओ, ईश्वर तुम्हारा भला करे। लो वे गङ्गा-पार उतर गए, वे रथ पर बैठ गए। सपने की तरह अयोध्या के सब सुख खो गए। अब आर्यपुत्र के मीठे-प्यारे वचन कब सुनने को मिलेंगे? कभी नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं। हाय रे सीता के भाग्य! आह! यह कैसी पीर उठी। अरे इस अभागिनी को कोई संभालो। अरे! मैं अयोध्या के महाप्रतापी महाराज की महारानी हूँ, पर इस समय कोई दास-दासी, सखी-सहेली तक पास नहीं। भगवती गङ्गा, क्या तुम्हारी गोद में जाऊँ? मन में प्यारे पुत्र का मुखड़ा देखने की कितनी लालसा थी! परन्तु सीता के भाग्य में पुत्रवती होना कहाँ? माता कौशल्या, बहन उर्मिला, आर्यपुत्र, ओह! अब नहीं सहा जाता। सब ने अभागिनी सीता को भुला दिया।

[मूर्च्छित हो जाती हैं]

[दो ऋषिकुमार आते हैं]

दोनों ऋषिकुमार—अरे। यह कौन स्त्री यहाँ मूर्छित पड़ी है, अथवा मर गई है?

[झुककर देखते हैं]

पहिला—अभी जीवित है।

दूसरा—साँस तो चलता है।

पहिला—आश्रम की तो नहीं है। कोई नगर की स्त्री ज्ञात होती है।

दूसरा - किसी बड़े घर की राजलक्ष्मी प्रतीत होती है। गहने नहीं हैं, पर कैसा रूप-तेज है।

पहिला—मूर्छित है !

दूसरा- अब क्या किया जाय ? किसे पुकारें ? कौन सहायता करे ? तुम जाकर गुरुजी को सूचना दे दो कि एक स्त्री गङ्गा किनारे मूर्छित पड़ी है। (देखकर) लो, वे गुरुजी स्नान करने इधर ही आ रहे हैं।

[वाल्मीकि जी आते हैं]

दोनों—गुरुजी प्रणाम !

वाल्मीकि - चिरजीव रहो पुत्र। यहां तुम क्या कर रहे हो ?

दोनों—आर्य, यह स्त्री यहाँ मूर्छित पड़ी है।

[देखकर]

वाल्मीकि—कौन है यह ? अरे ! यह तो रघुकुल की राजरानी सीता हैं !

दोनों—'क्या महारानी सीता हैं !

वाल्मीकि—पुत्रो, यत्न करो। कमण्डलु से जल के छींटे दो। सचेत करो इन्हें !

एक ऋषिकुमार—(आपस में) ये महारानी सीता हैं।

[छींटे देने से सीता सचेत हो जाती हैं]

सीता—आह ! वह स्वप्न भी टूट गया। (देखकर) आप कौन हैं ऋषिकुमार ? (ऋषि को देखकर) और आप ?

एक ऋषिकुमार—भगवती, ये हमारे गुरु महर्षि वाल्मीकि हैं।

सीता—ऋषिवर, प्रणाम ! अभागिनी सीता को कहीं आसरा मिलेगा ? उसके पापी प्राण तो उसके शरीर से बहुत ही मोह रखते हैं।

मेरी ओर नहीं देखा। धन्य लक्ष्मण, धन्य देवर। तुम-सा देवर, तुम-सा भाई जगत में न हुआ न होगा। जाओ, ईश्वर तुम्हारा भला करे। लो वे गङ्गा-पार उतर गए, वे रथ पर बैठ गए। सपने की तरह अयोध्या के सब सुख खो गए। अब आर्यपुत्र के मीठे-प्यारे वचन कब सुनने को मिलेंगे? कभी नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं। हाय रे सीता के भाग्य! आह! यह कैसी पीर उठी। अरे इस अभागिनी को कोई संभालो। अरे! मैं अयोध्या के महाप्रतापी महाराज की महारानी हूँ, पर इस समय कोई दास-दासी, सखी-सहेली तक पास नहीं। भगवती गङ्गा, क्या तुम्हारी गोद में जाऊँ? मन में प्यारे पुत्र का मुखड़ा देखने की कितनी लालसा थी! परन्तु सीता के भाग्य में पुत्रवती होना कहाँ? माता कौशल्या, बहन उर्मिला, आर्यपुत्र, ओह! अब नहीं सहा जाता। सब ने अभागिनी सीता को भुला दिया।

[मूर्च्छित हो जाती हैं]

[दो ऋषिकुमार आते हैं]

दोनों ऋषिकुमार—अरे। यह कौन स्त्री यहाँ मूर्छित पड़ी है, अथवा मर गई है?

[झुककर देखते हैं]

पहिला—अभी जीवित है।

दूसरा—साँस तो चलता है।

पहिला—आश्रम की तो नहीं है। कोई नगर की स्त्री ज्ञात होती है।

दूसरा - किसी बड़े घर की राजलक्ष्मी प्रतीत होती है। गहने नहीं हैं, पर कैसा रूप-तेज है।

पहिला—मूर्छित है !

दूसरा- अब क्या किया जाय ? किसे पुकारें ? कौन सहायता करे ? तुम जाकर गुरुजी को सूचना दे दो कि एक स्त्री गङ्गा किनारे मूर्छित पड़ी है। (देखकर) लो, वे गुरुजी स्नान करने इधर ही आ रहे हैं।

[वाल्मीकि जी आते हैं]

दोनों—गुरुजी प्रणाम !

वाल्मीकि - चिरजीव रहो पुत्र। यहाँ तुम क्या कर रहे हो ?

दोनों—आर्य, यह स्त्री यहाँ मूर्छित पड़ी है।

[देखकर]

वाल्मीकि—कौन है यह ? अरे ! यह तो रघुकुल की राजरानी सीता हैं !

दोनों—'क्या महारानी सीता हैं !

वाल्मीकि—पुत्रो, यत्न करो। कमण्डलु से जल के छींटे दो। सचेत करो इन्हें !

एक ऋषिकुमार—(आपस में) ये महारानी सीता हैं।

[छींटे देने से सीता सचेत हो जाती हैं]

सीता—आह ! वह स्वप्न भी टूट गया। (देखकर) आप कौन हैं ऋषिकुमार ? (ऋषि को देखकर) और आप ?

एक ऋषिकुमार—भगवती, ये हमारे गुरु महर्षि वाल्मीकि हैं।

सीता—ऋषिवर, प्रणाम ! अभागिनी सीता को कहीं आसरा मिलेगा ? उसके पापी प्राण तो उसके शरीर से बहुत ही मोह रखते हैं।

वाल्मीकि—पुत्री, संसार गोरख-धन्धा है और जीवन भी। तुम धैर्य-धारण करके भाग्य के विधान को देखो। पुत्रो, देवी को आश्रम में ले जाकर भगवती आत्रेयी को सौंप दो। उनसे कह देना कि यह रघुकुल-राजरानी सीता हैं, इनको कोई दुख न हो।

दोनों ऋषिकुमार—जो आज्ञा महाराज! चलिए महारानी!!

[जाते हैं]

छठा दृश्य

[अयोध्या में लक्ष्मण लौटकर महाराज राम को सन्देश देते हैं]

[illegible]—महाराज की जय हो।

राम—आगए भैया लक्ष्मण?

लक्ष्मण—हाँ, महाराज।

राम—सीता कहाँ छोड़ी भैया?

लक्ष्मण—महात्मा वाल्मीकि के आश्रम के पास, वन में।

राम—वह आश्रम में पहुँच गई होंगी भैया?

लक्ष्मण—पहुँच गईं होंगी महाराज!

राम—लक्ष्मण! क्या क्रुद्ध हो रहे हो भैया?

लक्ष्मण—महाराज, सेवक स्वामी पर कैसे क्रुद्ध हो सकता है?

राम—भैया लक्ष्मण!

लक्ष्मण—अब महाराज की आज्ञा हो तो मैं राजपरिवार की

सब बधुओं को सरयू में डुबो आऊँ। आज्ञा दीजिए महाराज !

राम—भैया, शान्त हो।

लक्ष्मण—महाराज ! यदि मुझे ज्ञात होता कि मुझे ऐसा निठुर काम करना पड़ेगा तो मैं पहिले ही प्राण त्याग देता।

राम - भाई ! राजधर्म बड़ा कठोर है।

लक्ष्मण—यह दास उसे नहीं समझता महाराज ! भगवती सीता को मैं गङ्गा के उस पार वन में धरती में मूर्छिता असहाय पड़ी छोड़ आया हूँ।

राम—मूर्छिता !

लक्ष्मण—वे एकटक मेरा लौटना देखती रहीं। जब मैं इस पार आकर रथ पर चढ़ चलने लगा, तो वे कटे पेड़ की भाँति गिर पड़ीं।

राम—हाय ! देवी सीता।

लक्ष्मण—मैं कुछ भी नहीं कर सका महाराज। अब मुझे मरवा डालिए। हाय रे, राजधर्म !

राम—इस राजधर्म पर धिक्कार है ! भाई लक्ष्मण, धीरज धरो ! हाय ! गुरु वशिष्ठ, भगवती अरुन्धती और सब माताएँ यह सब सुनेंगी तो क्या कहेंगी ? उन्हें कैसे समझाया जायगा ?

लक्ष्मण—वे सब सुन चुकी हैं महाराज !

राम—सुन चुकी हैं ? तो उन्होंने इस निर्दयी राम पर क्रोध नहीं किया ? शाप नहीं दिया ?

लक्ष्मण—महाराज वे सब अब अयोध्या में लौट कर नहीं आएँगे ?

राम—अयोध्या में नहीं आएँगे।

लक्ष्मण—हाँ, महाराज।

राम—क्यों भाई ?

लक्ष्मण—भगवती अरुन्धती ने कहा कि सीता के बिना हम अयोध्या में नहीं रहेंगे।

राम—भगवती अरुन्धती ने ?

लक्ष्मण—जी हाँ, और सब माताओं ने भी उन्हीं का साथ दिया।

राम—सब माताओं ने भी ?

लक्ष्मण—गुरु वशिष्ठ ने भी यही ठीक समझा।

राम—तो उन्होंने भी दास को त्याग दिया ? तो अब केवल तुम ही इस पापी राजा की परछांई की भाँति यहाँ बचे हो ?

लक्ष्मण—आर्य भरत भगवती मांडवी को साथ लेकर कहीं दूर चले गए हैं। उनके साथ सहस्रों पुरवासियों और राजकर्मचारियों ने भी अयोध्या छोड़ दी है। राजमहल में केवल बहुएँ और उनकी कुछ चेरियाँ रह गई हैं। आज्ञा हो तो उन्हें भी सरयू में डुबो दिया जाय।

राम—हाय ! भाई, सबने मुझे त्याग दिया। अब तुम भी ऐसी कठोर बात कहते हो ? (रोते हैं)

लक्ष्मण—अरे, महाराज ! यह आप बालक की भाँति रोने लगे।

राम—हाय ! सीता ! तुमने मेरे लिए राजभोग तजकर वन में दु:ख सहा। फूलों पर डरकर पैर रखने वाली तुम भाग्य-हीन मेरे साथ नंगे पैर वन-वन फिरीं। राक्षस रावण ने तुम्हें हर लिया, तो भी तुमने इस निर्दय राम को न भुलाया ! आज बिना अपराध मैंने तुम्हें त्याग दिया। अब मैं कैसे तुम्हारे बिना रहूँगा। अरे, तुमने तो कभी एक कड़वी बात भी नहीं बोली थी ! याद करने पर भी मुझे तुम्हारा कोई अपराध याद नहीं आता। अरी जनक-दुलारी, अरी अयोध्या की आँखों की पुतली, उस निर्जन

वन में मेरे रहते तू असहाय गर्भ का बोझ लिये पड़ी है।
धिक्कार ! मुझ पर धिक्कार !! धिक्कार !!!

[मूर्छित हो जाते हैं]

लक्ष्मण—अरे, दौड़ो ! महाराज मूर्छित हो गए। हाय ! दास-दासी भी सब महाराज की सेवा से जी चुराने लगे। सब भगवती सीता के लिए सिर धुन रहे हैं। उठिए महाराज ! हाय, मैं अकेला क्या करूँ ? अरे ! कोई आओ। कोई नहीं आता ? महाराज को सबने त्याग दिया ? महाराज, सावधान होइए। हाय रे। राजधर्म।

———

सातवाँ दृश्य

[**स्थान**—वाल्मीकि ऋषि का आश्रम।]

(**समय**—प्रातःकाल। सीता और वासन्ती देवी बात कर रही है दूर से वाटुकों के वेद पाठ की ध्वनि आ रही है)

सीता—अहा, मेघ निर्घोष के समान यह वेद-ध्वनि कैसी मधुर लग रही है। सुनने से कान पवित्र होते हैं। इस अमृत-ध्वनि के सुनते ही मन के सब पाप-ताप दूर हो जाते हैं।

वासन्ती—देवी, यह वन श्री शान्त-अभिराम और पुण्यमय है। राजभोग इसके सम्मुख नगण्य हैं।

सीता—सच है, बहिन, मुझे बारम्बार वनस्थली की वह अवर्णनीय शोभाशाली दिन याद आते हैं जब मैं आर्यपुत्र के साथ वहाँ रहती थी।

वासन्ती—अयोध्या के राजमहालय के ऐश्वर्य भोग याद नहीं आते देवी ?

सीता—न बहिन, उन भोगों ने हमें ही भोगा, हमने उन्हें नहीं भोगा।

वासन्ती—भोग तो ऐसे ही हैं देवी ! इसी से मनस्वीजन त्याग ही को श्रेष्ठ कहते हैं।

सीता—अथवा तप को। जहाँ वासना का दमन किया जाता है, इच्छाओं का संयम किया जाता है।

वासन्ती—इसी से तो त्याग और तप के लिए वन ही उपयुक्त है। जहाँ निःसर्ग का शुद्ध रूप जीवन को त्याग और तप की प्रेरणा देता है।

सीता—अहा, स्वप्नसुख के समान हमारे वे त्याग और तप के लम्बे दिन पंचवटी में बीत गए। जहाँ मृगी गर्व से सींग उठाकर मृग से खेलती थी। मृग के सींग से वह अपनी आँख खुजाती थी। गोदावरी के कूल पर जहाँ महावटों की डालियों की जड़ें, भगवती वसुन्धरा को चूमती थीं ? जिसकी सघन छाया में हमारी पर्णकुटी मनोरम प्रस्रवण पर्वत-श्रृङ्खला के सम्मुख कैसी मनोरम लगती थी।

वासन्ती—भगवती सीते! यहाँ की वनश्री भी अलौकिक है। वह सामने बहती गङ्गा का कलकल शब्द, स्वच्छ चांदनी में दूर तक फैली हुई रजत-रेती कितनी शान्त कितनी महान् और दिव्य दर्शना है।

सीता—परन्तु यहाँ आर्यपुत्र का सुखद सहवास कहाँ है ? उनके नव मेघ के समान मुख के दर्शन कहाँ हैं ? हीरक मणि-सी शुभ्र दृष्टि कहाँ हैं ? कुसुम जाल को लाँच्छित करने वाली अंक शैय्या कहाँ है ? अरी सखी, इन नेत्रों की तो उस प्रियदर्शन मुख के विना यह अलौकिक वनश्री सूनी ही सी लग रही है।

वासन्ती—देवी, यह तुम्हारे प्यार का प्रभाव है।

सीता—अहा, देखो, इस क्षुद्र हृदय में क्षोभ का अनन्त सागर लहरा रहा है ? परन्तु विदेह की कन्या और रघुकुल-वधू इस हतभागा सीता के संताप को कैसे कहा जाय, जिसने विधि-विडम्बना से अपनी सब अभिलाषाओं को सूखी तपस्या से जकड़कर बाँध रखा है। तनिक भी असावधान होने से वह बाँध टूट जाता है। सोया हुआ प्रेम जाग उठता है। और रुंधे हुए आँसुओं की वेगवती धारा उच्छ्वास के साथ फूट निकलती है।

वासन्ती—देवी, हम तपस्विनी हैं। भला, इन प्रेम-आसक्ति की बातों से हमारा, क्या प्रयोजन है ?

सीता—सान्ध्य वेला आ रही है, मेघाडम्बर की लाल सिन्दूर रेखा भाल पर दिए हुए। वनश्री धीरे-धीरे स्तब्ध होती जा रही है। यह पूर्वाकाश में चन्द्रोदय हो रहा है। आर्यपुत्र, तुम कहाँ हो ? कहाँ हो, ओ निष्ठुर, ओ निर्मम !

वासन्ती—देवी सीता, धैर्य धारण करो। (लवकुश आते हैं) देखो वे चिरन्जीव लव-कुश आ रहे हैं, सान्ध्य क्रीड़ा करके। ये तुम्हारी आत्मा के अंश हैं। इन्हीं में अपना मन रमाओ। इन्हें अपना प्यार दो।

[लव-कुश आकर सीता से लिपट जाते हैं]

सीता—(रोती हुई) आओ मेरे लाल, मेरे नेत्रों की ज्योति, मेरे जीवन-धन। अब तो तुम्हीं इस दुखिया माता के सहारे हो।

[छाती से लगा लेती हैं।]

———

आठवाँ दृश्य

[स्थान–ऋष्यशृङ्ग का आश्रम।]

(समय—प्रातःकाल। आश्रमवासिनी आत्रेयि और मुनि विभाण्डक बातें करते हैं।)

विभाण्डक—आर्ये आत्रेयि, महा तपस्वी ऋष्यशृङ्ग का बारह वर्ष का सत्र तो अब समाप्त हो गया, महात्मा ऋष्यशृङ्ग ने पूजा करके सब गुरुजनों को विदा कर दिया। किन्तु अयोध्या का राज-परिवार और रघुवंशियों की रखवाली करने वाले महर्षि वशिष्ठ तो अभी यहीं हैं। वे सब कब अयोध्या जाएँगे?

आत्रेयि—वे सब अब अयोध्या नहीं जाएँगे। भगवती अरुन्धती ने कहा है कि सीता से रहित अयोध्या में मैं नहीं जाऊँगी। उनके आग्रह को देख कौशिल्या आदि राजमाताओं ने भी यही ठान-ठान ली है। उनके इस हठ के कारण महर्षि वशिष्ठ भी निरुपाय हो रहे।

विभाण्डक—अच्छा, तो उस निर्दयी राजा को सबने त्याग दिया? फिर भला अब राजा का पुरोहित कौन है?

आत्रेयि—वामदेव ऋषि राज के सब वेदोक्त संस्कार कराते हैं।

विभाण्डक—भला, राजा ने निष्पाप महिषी सीता का गर्भावस्था में त्याग किया, तो फिर दूसरा विवाह भी किया ?

आत्रेयि—नहीं भाई, रामचन्द्र एक पत्नीव्रती संयम से रहते हैं।

विभाण्डक—अहा, तब तो राजा में अभी विवेक है। फिर यही बात थी तो उसने निर्दोष पत्नी को क्यों त्यागा ?

आत्रेयि—अपवाद के भय से।

विभाण्डक—तो उस धर्मात्मा राजा ने केवल अपवाद के भय से गर्भभार से व्याकुल वैदेही को त्यागते हुए मन में ग्लानि नहीं की ?

आत्रेयि—अरे, हम तपस्वी राजकाज की जटिलता क्या जानें। कहा है न, तप से राजा होता है और अधर्म से राजा नर्क में जाता है। सो ठीक ही है। कर्तव्यवश राजा को घोर कर्म भी करने पड़ते हैं !

विभाण्डक—अकारण पत्नी का निष्काशन जैसा निष्ठुर काम भी करना पड़ता है।

आत्रेयि—राजा ने बहुत अनुनय-विनय कर राज-परिवार को राजधानी में बुलाया था। परन्तु भगवती अरुन्धती का क्रोध शान्त न हुआ। अब महर्षि वशिष्ठ ने कहा है कि अपने गुरुकुल ही में राजमाताओं सहित चल कर रहेंगे।

विभाण्डक—तो रघुकुल की रक्षा कैसे होगी ? सुना है, महात्मा भरत भी अयोध्या में नहीं हैं।

आत्रेयि—वे मामा के यहाँ देवी माण्डवी सहित रहने लगे हैं। कौशल के राज्य से उन्हें अब क्या लेना-देना है ?

विभाण्डक—अहो, यह तो अद्भुत व्यापार है, जिस सीता के लिए राजा ने महापराक्रम कर महाबली रावण का

सवंश नाश किया, उसी सीता को उसने इस प्रकार त्याग दिया। ऐसा तो कोई पति नहीं कर सकता!

आत्रेयि—भाई, राजकाज के सौ झंझट हैं।

विभाण्डक—न जाने अब भगवती सीता कहाँ हैं, कैसी हैं?

आत्रेयि—सुना है, महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में हैं।

विभाण्डक—यह भी तो सुनते हैं कि महर्षि वाल्मीकि को शब्द ब्रह्म का प्रकाश स्पष्ट हुआ है, और वे दिव्य दृष्टि और आर्ष ज्ञान से नागात्मक काव्य रच रहे हैं।

आत्रेयि—ऐसा ही सुनते हैं। यह भी सुना है, दो ऋषिकुमार दिव्यवाणी से वह काव्य-गायन करते हैं।

विभाण्डक—यह तो वेद से भिन्न पहिली ही रचना है।

आत्रेयि—ऐसा ही है। लो, धूप चढ़ गई, भगवती अरुन्धती का आज उपवास है, चलूँ, देखूँ, भगवती क्या आज्ञा देती हैं।

[दोनों जाते हैं]

नवाँ दृश्य

[**स्थान**—अयोध्या का राजमहालय।]

(**समय**—प्रातःकाल। राम और लक्ष्मण परस्पर बातचीत करते हैं।)

राम—(ठण्डी साँस लेकर) तो भरत अब अयोध्या में नहीं आएँगे?

लक्ष्मण—महाराज की आज्ञा से मैंने चर भेजा था; परन्तु उन्होंने कहा—निष्पाप भगवती सीता के साथ ऐसा निर्मम दुष्कृत्य करने वाले राजा से मेरा क्या सम्बन्ध है ?

राम—ठीक ही तो कहा, जिस भरत ने मुझ भाग्यहीन के लिए अयोध्या के साम्राज्य को ठुकरा दिया। चौदह वर्ष मेरी पादुका लेकर जिसने अपनी असीम निष्ठा का परिचय दिया उसी प्राणाधिक भरत ने आज मुझे त्याग दिया, सो दोष मेरा ही है।

लक्ष्मण—शत्रुघ्न ने लवण को परास्त कर मधुपुरी आधीन कर ली है। वे भी वहीं बस गए हैं।

राम—समझ गया, इस अधम राजा का मुँह वह नहीं देखना चाहते। यह भी ठीक है।

लक्ष्मण—महात्मा ऋष्यशृङ्ग का सत्र सम्पूर्ण हो गया। अब महर्षि वशिष्ठ और भगवति अरुन्धती सब माताओं तथा राजपरिवार सहित गुरुकुल वास के लिए चले गए हैं।

राम—तो वे सब गुरुपद अब राजधानी में नहीं आएँगे ?

लक्ष्मण—ऐसा ही है महाराज !

राम—(आँखों में आँसू भरके) वत्स लक्ष्मण, अब केवल तुम्हीं देवता की भाँति अपने दम से इस अधम राम की रक्षा कर रहे हो। भाई, तुम्हारी अमर-अक्षय कीर्ति जगत में जब तक सूर्य-चन्द्र हैं, तब तक गाई जायगी। तुम्हारा प्रेम पवित्र है, चरित्र महान् है, त्याग अनुपम है, तुम्हारे गुण ऐसे हैं कि सारे संसार के मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे।

लक्ष्मण—महाराज, इन बातों का अब क्या प्रकरण है ?

राम—जिस दिन युद्ध में तुम्हारी छाती में शक्ति लगी थी। तुम्हारे घाव से रक्त की धार बह रही थी। तब मेरे नेत्रों में अन्धकार छा गया था। उस दिन मैंने समझा था कि हम-तुम दोनों संसार-सागर में एक नाव पर सवार हैं। हमारे शरीर दो हैं—प्राण एक हैं। हम कभी अलग नहीं हो सकते। सो आज तुम ही मेरे पास रह गए। सबने मुझे त्याग दिया।

लक्ष्मण—महाराज, अब दुःख करने से क्या लाभ है? लीजिए, वे ऋषिवर वामदेव आ रहे हैं।

[वामदेव आते हैं]

राम—(उठकर) अभिवादन करता हूँ भगवन्!

वामदेव—महाराज की जय हो, सब अकल्याण दूर हों।

राम—कहिए, ऋषिवर, आज किस आज्ञा से इस दास को धन्य करने इस समय पधारने का कष्ट किया?

वामदेव—राजन्, तुम्हारा यह दुःख तो देखा नहीं जाता। अब इस जर्जर शरीर पर इतने बड़े साम्राज्य का भार भी है, और हृदय का भार भी है।

राम—सो यह तो भगवन्, जीते जी भार ढोना ही होगा।

वामदेव—राजन्, राजधर्म का पालन करके राजा प्रथम अपना कल्याण करता है, फिर पृथ्वी का।

राम—सो मैं अपना कल्याण तो कर चुका ऋषिवर!

वामदेव—महाराज, त्याग सबसे श्रेष्ठ तप है, उसका पुण्य बहुत है। उसे कातर बन कर क्षीण मत कीजिए।

राम—गुरुदेव की अब इस दास को क्या आज्ञा है?

वामदेव—महाराज, तप से तेज बढ़ता है। सो आप तेज धारण कीजिए।

राम—किस प्रकार ऋषिवर ?

वामदेव—आप महर्षि वशिष्ठ की सेवा में जाइए।

राम—कौन-सा मुँह लेकर जाऊँ ?

वामदेव—इतनी आत्म-प्रतारणा क्यों ?

राम—मेरा दुष्कृत्य लोक-विख्यात है ऋषिवर !

वामदेव—महाराज, दुष्कर्म करके आपने क्या कोई स्वार्थ साधना की है ?

राम—नहीं ऋषिवर !

वामदेव—तो आप ऐसा मानते हैं कि आपने किसी पर अत्याचार किया है ?

राम—केवल अपने ऊपर।

वामदेव—तो महाराज, आपने आत्मयज्ञ का पुण्य लाभ किया है। आप ऋषिवर वशिष्ठ की सेवा में जाइए।

राम—जाकर क्या कहूँ ?

वामदेव—कहिए कि मैं अश्वमेध का अनुष्ठान करूँगा।

राम—अश्वमेध ?

वामदेव—क्यों नहीं, क्या आप सार्वभौम सम्राट् नहीं हैं ? क्या पृथ्वी पर आप-सा धीरवीर, धर्मप्राण, कर्तव्यनिष्ठ और भी कोई राजा हुआ है ?

राम—ऋषिवर, प्रेम के कारण ऐसा कह रहे हैं।

वामदेव—जिस सत्य को मैं देख रहा हूँ, वह संसार देखे, मैं यही चाहता हूँ।

राम—वह कैसे ?

वामदेव—आप अश्वमेध कीजिए।

राम—मैं मग्न हृदय राम क्या इसका अधिकारी हूँ।

वामदेव—हैं।

राम—मैं विपत्नीक हूँ। राज महिषी के बिना अश्वमेध अनुष्ठान कैसे हो सकेगा ?

वामदेव—भली भाँति हो सकेगा।

राम—किस विधि से ?

वामदेव—वह विधि भगवान् वशिष्ठ आपको बतावेंगे। आप वशिष्ठ की सेवा में जाइए।

राम—जैसी ऋषिवर की आज्ञा। भाई लक्ष्मण, इसकी व्यवस्था तुम करो।

लक्ष्मण—जो आज्ञा महाराजा !

[जाते हैं]

दसवाँ दृश्य

[**स्थान**—महर्षि वशिष्ठ का गुरुकुल।]

(**समय**—प्रातःकाल। वशिष्ठ और श्रीराम बातें कर रहे हैं।)

वशिष्ठ—रामभद्र, तुम किस लिए अब मेरे पास आए हो ?

राम—ऋषिवर, यह दास अब और कहाँ जाए ? आप कहिए, मैं क्या करूँ ?

वशिष्ठ—कठिनाई क्या है रामभद्र ?

राम—गुरुदेव, छोटे-छोटे राजाओं की मनमानी से प्रजा में शान्ति नहीं रहती है।

वशिष्ठ—तब ?

राम—एक-छत्र राज्य की बड़ी आवश्यकता है।

वशिष्ठ—तुम प्रतापी राजा हो राम। एक-छत्र राज्य की स्थापना करो।

राम—ऋषिवर, मैं अकारण किसी पर चढ़ाई नहीं करूँगा।

वशिष्ठ—तव एक वात है।

राम—कौन वात गुरुदेव ?

वशिष्ठ—अश्वमेध यज्ञ करो।

राम—अश्वमेध ?

वशिष्ठ—हाँ, रामभद्र।

राम—गुरुदेव !

वशिष्ठ—क्यों राम, क्या हुआ ?

राम—आर्य, मैं भाग्यहीन, पत्नी और पुत्रहीन राजा हूँ। यज्ञ का अधिकारी नहीं।

वशिष्ठ—रामभद्र, तुम दूसरा विवाह करो। पत्नी और पुत्र तुम्हें प्राप्त होंगे।

राम—हाय ! गुरुवर। आप यह क्या कह रहे हैं। (रोते हैं)

वशिष्ठ—रोते हो रामभद्र।

राम—भगवान् आपने मेरा घाव छू दिया।

वशिष्ठ—रामभद्र। तुम तो वालक की भाँति अधीर हो गये वत्स।

राम—गुरुदेव ! सीता को त्यागे आज अठारह वर्ष व्यतीत होते हैं।

वशिष्ठ—होते तो हैं।

राम—आज अठारह वर्षों में मैंने सीता की सुध भी नहीं ली। !

वशिष्ठ—हुआ तो ऐसा ही है।

राम—मैंने ऐसी निठुराई करके अपने ही ऊपर अत्याचार किया है।

वशिष्ठ—अपने ही ऊपर ?

राम—हाँ, ऋषिवर। अब आप ऐसी आज्ञा मत दीजिए कि मैं सीता पर अत्याचार करूँ।

वशिष्ठ—अब सीता पर और क्या अत्याचार होगा रामभद्र ?

राम—दूसरा विवाह करना सीता पर अत्याचार है।

वशिष्ठ—धन्य रामभद्र, धन्य हो तुम। धन्य तुम्हारी निष्ठा। धन्य तुम्हारा प्रेम !

राम—तो भगवान्, अश्वमेध नहीं हो सकेगा।

वशिष्ठ—हो सकेगा राम। सीता की सोने की मूर्ति तुम्हारी अर्धाङ्गिनी होगी।

राम—सीता की सोने की मूर्ति।

वशिष्ठ—हाँ, रामभद्र।

राम—(उत्तेजित होकर) ऋषिवर······

वशिष्ठ—रामभद्र शान्त हो।

राम—सीता की मूर्ति ?

वशिष्ठ—हाँ, राम।

राम—मेरे अहोभाग्य भगवन्। मैं उस मूर्ति में पवित्रात्मा सीता को देख पाऊँगा तो ?

वशिष्ठ—अवश्य। राम, तुम यज्ञ की तैयारी करो।

राम—जो आज्ञा ऋषिवर।

वशिष्ठ—और स्वयं महात्मा वाल्मीकि के आश्रम में जाकर उन्हें निमन्त्रण दे आओ।

राम—जो आज्ञा (सङ्कोच सहित) परन्तु ऋषिवर स्वयं और सब माताएँ भी चलेंगी तो अच्छा।

वशिष्ठ—ऐसा ही हो रामभद्र। मैं उनसे कह दूँगा।

राम—तो दास चलो। माताओं को मुँह दिखाने की ढिठाई मुझसे न होगी।

वशिष्ठ—समय पर सब हो रहेगा राम! जाओ, अपना कार्य करो। कुण्ठित न हो।

राम—अभिवादन करता हूँ गुरुदेव!

वशिष्ठ—तुम्हारा कल्याण हो रामभद्र।

[जाते हैं]

———

ग्यारहवाँ दृश्य

(भगवान् वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश सीता से बातें करते हैं)

लव—माता, आज हम तुमसे वह भेद पूछ कर रहेंगे।

सीता—कौनसा भेद पुत्र ?

कुश—और, नहीं बताओगी तो रूठ जायेंगे; बोलेंगे नहीं।

सीता—क्यों मेरे लाल ? दुखिया माँ से रूठोगे ?

लव—तो बता दो आज।

कुश—सब ऋषिकुमार हमें चिढ़ाते हैं।

लव—हँसी करते हैं। कहते हैं बताओ, तुम्हारे पिता कौन हैं ?

सीता—प्यारे पुत्रो, तुम्हारे पिता महात्मा वाल्मीकि ही तो हैं ?

कुश—नहीं, माँ। वे तो हमारे गुरुपद हैं।

सीता—पुत्रो, गुरु ही पिता होता है।

लव—वाह ! गुरु तो सभी के गुरु हैं; पर सबके पिता भी तो और हैं ? यह हम जानते हैं।

कुश—हमें बहकाओ मत अम्मा !

सीता—क्यों बेटा, अभागिनी माँ पर विश्वास नहीं करते ?

[आँसू पोंछती हैं]

लव—रोने क्यों लगीं माता ? तुमसे जब पिताजी का नाम पूछते हैं, तभी तुम रोने लगती हो।

कुश—रोओ मत अम्मा। अब हम कभी न पूछेंगे।

सीता—मेरे नयन-दुलारो। तुम्हीं मेरे जीवनधन और आँखों के उजाले हो। तुम जीते रहो पुत्रो।

लव—तुम हमारी बड़ी अच्छी अम्मा हो। हो न माँ।

सीता—अरे पुत्रो। मैं तो तुम्हारी धाय हूँ; दासी।

कुश—ऐसा न कहो अम्मा।

सीता—लाल, तुम्हारी माँ तो बड़ी भारी महारानी थी। उनका बड़ा प्रताप था। उनके बड़े-बड़े महल थे। राजधानी थी। हाथी घोड़े, रथ थे।

लव—सच ?

सीता—सचमुच पुत्रो।

लव—महल, हाथी, घोड़े कैसे होते हैं माँ ?

सीता—बेटे, बड़े होने पर तुम वे सब देखोगे।

कुश—हम बड़े कब होंगे अम्मा ?

सीता—अरे मेरे लाल, अब तुम बड़े हो गए हो।

कुश—तो हम महल, हाथी, घोड़े कब देखेंगे ?

सीता—बहुत शीघ्र पुत्रो !

कुश—और अम्मा को भी ?

सीता—हाँ, बेटे।

लव—और पिताजी को भी ?

सीता—उन्हें भी।

कुश—तो हमारे पिताजी हैं तो ?

सीता—हैं।

कुश—और गुरुपद ?

सीता—वे तुम्हारे धर्म पिता हैं।

लव—और तुम अम्मा ?

सीता—मैं तुम्हारे पिता की दासी, तुम्हारी धाय।

कुश—तो हम यहाँ क्यों आ गये माँ।

सीता—भाग्य ले आया लाल।

कुश—तुम्हें भी ?

सीता—मुझे तुम्हारे पिता ने निकाल दिया था।

लव—महल से निकाल दिया था ?

सीता—हाँ, लाल।

कुश—क्यों अम्मा ?

सीता—बेटा, वे राजा हैं।

कुश—और वे महल में रहते हैं ?

सीता—हाँ, पुत्र।

लव—मैं उनसे नहीं बोलूँगा।

कुश—पिताजी बड़े बुरे हैं।

सीता—ऐसा न कहो लाल। तुम्हारे पिता दया और धर्म के अवतार हैं।

लव—और हमारी माता ?

सीता—हाँ, वे, वे भी।

लव—हमारी माता तुम हो ?

सीता—लाल, मैं तुम्हारी दासी हूँ।

कुश—तुम हमारी माँ हो।

सीता—यह दुखिया, भिखारिन तुम्हारी माँ। हाय रे! भाग्य।

कुश—माँ, तुम फिर रोने लगीं! मुझे बड़ा होने दो। मैं तुम्हारे लिए एक महल बनवाऊँगा।

लव—और मैं हाथी-घोड़े ले आऊँगा।

[बहुत से ऋषिकुमार कोलाहल करते आते हैं।]

एक ऋषिकुमार—कुमार! घोड़ा एक पशु होता है न। ऐसा सुना था, वह आज यहाँ आया है।

लव—घोड़ा एक पशु है और वह युद्ध में काम आता है। कहाँ देखा तुमने घोड़ा?

दूसरा ऋषिकुमार—आश्रम के उस पार है। उसकी बड़ी-सी पूँछ है। उसे वह बार-बार हिला रहा है।

तीसरा ऋषिकुमार—उसकी गर्दन बड़ी लम्बी है।

चौथा ऋषिकुमार—पैर में चार खुर हैं।

पाँचवाँ ऋषिकुमार—भूख लगने पर घास खाता है।

छठा ऋषिकुमार—आम के बराबर लीद करता है।

सातवाँ ऋषिकुमार—चलो कुमार, उसे पकड़ लें। बड़ा मजा होगा।

लव—चलो फिर। देखें, कैसा वह घोड़ा है।

[सब जाते हैं]

बारहवाँ दृश्य

लव—हाँ, यही है घोड़ा। ठहरो, मैं इसे बाँधता हूँ। तुम उसे ढेला मारकर रोको।

सब ऋषिकुमार—आहा हा! बड़ा मजा है।

(सब चिल्लाते हैं। घोड़ा हिनहिनाता है। सिपाही आते हैं)

एक सिपाही—अरे! किसे अपनी जान भारी हुई है, जिसने अश्वमेध का घोड़ा रोका है। तुमने क्या महा प्रतापी राजा राम का नाम नहीं सुना? जिन्होंने रावण का वंश नाश कर दिया। उनसे जो वीर लोहा ले, यह घोड़ा रोके।

कुश—अरे! यह तो घमण्ड की बातें करता है। सिपाहियो; क्या तुम्हारे महाराज-सा कोई शूर ही नहीं है?

दूसरा सिपाही—अरे ऋषिकुमार, क्यों गाल बजाते हो। कुमार चन्द्रकेतु इस घोड़े की रखवाली कर रहे हैं। वे जब तक आवें तब तक घोड़े को छोड़ दो और यहाँ से खिसक जाओ। इसी में भला है।

सब ऋषिकुमार—छोड़ दो कुमार, इनके चमकीले शस्त्रों से हमें डर लगता है। चलो, हम सब छलाँगें मारते भाग चलें।

लव—(हँसकर) क्या चमकीले शस्त्रों से हम डरते हैं। हमारे पास भी तो धनुष है।

(धनुष पर डोरी चढ़ाता है)

सब ऋषिकुमार—अरे! कुमार को क्रोध आ गया।

दूसरे—और ये बाणों की वर्षा करने लगे।

(सिपाही घायल होकर चिल्लाते हैं, कोलाहल मचता है)

(नेपथ्य में)

(सावधान रहो, वह रथ दौड़ाते हुए कुमार चन्द्रकेतु आ रहे हैं)

(कुमार चन्द्रकेतु आते हैं)

चन्द्रकेतु- आर्य सुमन्त, हमारा रथ उसी वीर ऋषिकुमार के सामने ले चलिए। अरे! यह तो रघुवंशियों की भाँति लड़ रहा है!

सुमन्त—क्या कहने हैं। वह ऋषिकुमार महावीर है।

चन्द्रकेतु—परन्तु उस अकेले पर इतनों का इकट्ठा होकर हल्ला बोलना तो ठीक नहीं।

सुमन्त—पर वे सब उसका कर ही क्या सकते हैं। वह तो सबको मारे डाल रहा है! देखो! वह हमारी सेना भागने लगी।

चन्द्रकेतु—तो शीघ्रता कीजिए आर्य! हमारा रथ जल्द वहाँ पहुँचाइए।

सुमन्त—अच्छा, कुमार। लो, वह वीर तुम्हारी ललकार सुनकर यहीं आ गया।

लव—कुमार चन्द्रकेतु, लो मैं आ गया।

(कोलाहल मचता है)

लव—(हँसकर) अरे देखो! ये हारे हुए सेनापति फिर मेरे सामने आने का साहस कर रहे हैं।

चन्द्रकेतु—ठहरो ऋषिकुमार। उनकी चिन्ता मत करो। लो, मैंने इन्हें रोक दिया। पर तुम पैदल और मैं रथ पर, यह

ठीक नहीं। मैं भी नीचे आता हूँ। आर्य, रथ रोक दीजिए। मैं पैदल लड़ूँगा।

सुमन्त—किस लिए कुमार?

चन्द्रकेतु—इस वीर ऋषिकुमार का आदर करने के लिए। ऋषिकुमार, यह रघुवंशी चन्द्रकेतु आपका अभिवादन करता है।

लव—कुमार इतना आदर दिखाने की क्या आवश्यकता है? आप रथ पर चढ़े ही अच्छे लगते हैं।

चन्द्रकेतु—तो आप भी एक रथ पर चढ़िए।

लव—अरे, हम वनवासी रथ पर चढ़ना क्या जानें?

सुमन्त—धन्य ऋषिकुमार। आपका विनय धन्य है।

लव—कुमार, सुना है महाराज राम को अभिमान नहीं है, फिर उनके सेवक क्यों अभिमान करते हैं।

चन्द्रकेतु—अश्वमेध के घोड़े को रोकना रार ठानना ही है। जो लड़ना चाहे, वही घोड़े को रोके।

लव—क्षत्रिय तो पृथ्वी पर और भी हैं।

सुमन्त—ऋषिकुमार, तुम छोटे मुँह बड़ी बात कहते हो।

लव—(हँसकर) तो आर्य, परशुराम को तो महाराज ने मीठी-मीठी बातों ही से जीता था।

चन्द्रकेतु—अरे! बड़ों की निन्दा करता है?

लव—अरे! मुझ ही को आँख दिखाता है।

चन्द्रकेतु—अब इसका निर्णय शस्त्र करेंगे।

लव—उठाओ शस्त्र।

[दोनों लड़ते हैं]

———

तेरहवाँ दृश्य

[-पुष्पक विमान आता है—उसमें से राम उतरते हैं]

राम—पुत्रो, लड़ाई रोक दो, लड़ाई रोक दो।

चन्द्रकेतु—अरे। महाराज स्वयं ही पधारे हैं।

लव—सच, तब चलो। पूज्य चरणों में प्रणाम करें।

राम—अरे पुत्रो, तुम्हारे घाव तो नहीं लगा।

चन्द्रकेतु—नहीं महाराज, अब हम मित्र हो गए।

राम—बहुत अच्छा किया। तुम्हारा मित्र तो वीर धीर दीखता है वत्स।

लव—महाराज, वाल्मीकि शिष्य आपको अभिवादन करता है।

राम—आयुष्मान् होओ। आओ कुमार, मेरी गोद में बैठो। तुम्हें देखकर तो जैसे प्राण हरे हो गए। तुम्हारा नाम क्या है?

(अ त प के ढंग पर)

लव—आर्य, दास का नाम 'लव' है। हाय! श्री महाराज तो मुझसे इतना प्यार करते हैं और मैं लड़ बैठा।

राम—पुत्र, तुम्हारी वीरता तुम्हें ही सजती है। कुमार! तुम किस भाग्यवान के पुत्र हो।

लव—महाराज, हम भगवान् वाल्मीकि के पुत्र हैं।

राम—तो तुम अकेले हो?

लव—नहीं महाराज बड़े भाई आर्य कुश हैं। आर्य कुश, स्वयं महाभाग महाराज रघुपति यहाँ विराजमान हैं, इन्हें अभिवादन कीजिए।

कुश—ये ही रामायण के नायक महाराज-महाभाग राम हैं!

महाराज, यह वालमीकि-पुत्र कुश आपको अभिवादन करता है।

राम—आयुष्मान होओ! अरे! दाहिने अङ्ग फड़कने लगे। इन बालकों को देखकर तो इन्हें छाती से लगाने को जी चाहता है आओ आयुष्मानों यहाँ हमारी गोद में बैठो।

कुश—महाराज, धूप बहुत तेज है। आइए, इस साल के पेड़ की छाँह में बैठिए।

राम—अच्छा पुत्र, चलो। अहा! इन बच्चों की मुखाकृति देवी सीता से कितनी मिलती है। हाय! मेरे पुत्र भी इतने बड़े हुए होते। पर अब इन बातों से क्या? (ठण्डी साँस लेकर) हाय! देवी सीता।

लव—महाराज क्या सोच रहे हैं। यह! क्या? महाराज तो रो रहे हैं।

राम—(आँसू पोंछकर) कुछ नहीं पुत्रो, कुछ नहीं। यह अभागा मन तो योंही अधीर हो जाता है। हाँ, यह तो कहो। सुना है, महात्मा वाल्मीकि एक काव्य रच रहे हैं, रामायण।

लव—हाँ, महाराज। उसमें श्रीमहाराज का ही तो वर्णन है।

राम—कैसा वर्णन है, सुनूँ तो!

लव—एक श्लोक तो आज ही पढ़ा है।

राम—सुनाओ पुत्रो, कैसा श्लोक है?

लवकुश :—

सीताजी श्रीराम की प्रिया रही अत्यन्त।
सीताजी के गुण से बढ़ा प्यार नित नित्य॥

राम—हाय! देवी सीते। तुम ऐसी ही थीं।

(एक ऋषिकुमार आता है)

ऋषिकुमार—(दूर से पुकार कर) अरे मित्रो, तुम नहीं जानते। आज आश्रम में बड़े-बड़े अतिथि आए हैं। इसी से गुरुजी ने हमें छुट्टी दे दी है।

लव—कौन-कौन आए हैं ?

कुश—(देखकर) अरे ! वे सब तो इधर ही आ रहे हैं।

लव—पर इन सबके आगे चीथड़ा लपेटे हुए यह कौन है।

राम—(खड़े होकर) ये महात्मा वशिष्ठ हैं। इनके साथ भगवती अरुन्धती और माता कौशल्या भी हैं। हाय ! मुझ पर तो विपत का पहाड़ टूट पड़ा। अब कहाँ पापी मुँह छिपाऊँ ? अरे पुत्रो, इन गुरुजनों को आगे बढ़कर सत्कार से प्रणाम करो।

(सब कुमार आगे बढ़ते हैं। राम एक ओर को जाते हैं)

कौशिल्या—अहा ! देखो, आज इन ऋषिकुमारों को छुट्टी हो गई है। बेचारे मग्न होकर खेल-कूद कर रहे हैं। अरे ! इनके बीच यह कौन देवता के जैसा बैठा था। कहीं मेरे राम तो नहीं। गुरुदेव, आप तो राम को पहचानते हैं। लो, वे हमें देखकर खिसक गये। हाय ! राम !

वशिष्ठ—रामभद्र ही हैं। महारानी, तुमने इन दोनों बालकों को भी देखा, जो उनके कन्धे पर हाथ धरे खड़े थे। लो, वे सब इधर आ रहे हैं।

कौशिल्या—ऋषिवर, ये दोनों बालक कौन हैं ? ये तो क्षत्रिय बालक दीख पड़ते हैं। पीठ पर तरकस, हाथ में धनुष, सिर पर जटा, मजीठ की रंगी धोती, मूँज की करधनी, पीपल का डण्डा।

वशिष्ठ—ये क्षत्रिय कुमार ही हैं महारानी।

कौशिल्या—(आँखों में आँसू भरकर) राम जब इतने बड़े थे तो बिल्कुल ऐसे ही थे। हाय ! राम।

वशिष्ठ—चलो, महारानी। हम सब महात्मा वाल्मीकि के पास चलकर अपने सन्देह दूर करें।

कौशिल्या—चलिए ऋषिवर।

[सब जाते हैं]

चौदहवाँ दृश्य

[सीता और उसकी सखी वासन्ती]

(वाल्मीकि का आश्रम)

सीता—अरी सखी, सुना है वे आये हैं।

सखी—कौन देवी ?

सीता—वही, मेरे जीवनधन, प्राणों के प्रिय, महाराज रघुपति।

सखी—सुना तो मैंने भी है। तो देवी, तुम गंगा में स्नान करके नई मृगछाला पहन लो। लाओ, मैं तुम्हारे उलझे हुए बालों को गूँथ दूँ, फूलों से सजा दूँ।

सीता—क्यों सखी ? यह किस लिए।

सखी—देवी, एक बार आँख भरके तुम्हें मैं वनदेवी के रूप में देखना चाहती हूँ। हाय ! मुरझाई हुई बेल की तरह तुम्हारी सोने की देह······

सीता—सखी, यह देह आज मैं गङ्गा में विसर्जन करूँगी।

सखी—ऐसी बात न कहो देवी। तुम्हारा यह पुण्य शरीर......

सीता—यह पापी शरीर......

सखी—नहीं, नहीं। पति और पुत्र के रहते ऐसा न कहो। पर महाराज को ऐसा नहीं करना चाहिए था।

सीता—प्यारी सखी, रघुकुल-कमल की निन्दा मत करो।

सखी—धन्य सती। आज भी तुम्हारे मन में उनका वैसा ही प्यार है।

सीता—प्यार की अमृतधारा पीकर अठारह वर्ष से जी रही हूँ, सखी। पर आज मैं मरूँगी।

सखी—चुप रहो देवी। ऐसी बातें न करो।

सीता—मैं कैसे उन्हें पापी मुँह दिखाऊँगी। मैं अनाथ हूँ।

सखी—महाराज के रहते।

सीता—हाय रे! मेरा भाग्य। (रोती हैं)

(राम जाते हैं)

राम—यहीं तो देवी सीता को मैंने त्यागा था। हाय! सीता, तुम कहाँ हो?

सीता—अरे! यह तो वही पुरानी पहचानी हुई बोली है। अनेक दिनों बाद कानों में आज फिर अमृत वर्षा हुई।

सखी—देवी, संभल जाओ। वे इधर ही आ रहे हैं।

सीता—हाँ, वे ही हैं। कितने दुर्बल हो गए हैं। मुँह पीला हो गया है। बाल पक गये हैं। सखी, मेरा सिर घूम रहा है।

राम—हाय! सीता, प्यारी सीता।

सीता—हाय! आर्यपुत्र।

राम—अरे, मेरे सुख-दुःख की संगिनी जनक दुलारी सीता......

(मूर्छित हो जाते हैं)

सीता—अरी सखी, वे तो इस अभागिनी को पुकारते-पुकारते ही मूर्छित हो गए।

सखी—चलो, देवी। उनका कुछ यत्न करें।

सीता—सखी, मेरा हाथ पकड़ कर चलो। मेरी आँखें आँसुओं से अन्धी हो रही हैं, और मेरे पाँव लड़खड़ा रहे हैं।

(दोनों मूर्छित राम के पास जाती हैं)

सखी—देवी, महाराज के शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरो।

राम—(मूर्छा में) चन्द्रमा नहीं है। दूर तारे टिमटिमा रहे हैं। सन्नाटा छा रहा है। नगरवासी सो रहे हैं। पर उनके राजा की आँखों में नींद नहीं है। कितने दिन बीत गए, सीता, कहाँ हो? कहाँ हो? (पुकार कर) आओ सीते, आओ।

सीता—अरे! महाराज मूर्च्छा में वड़वड़ा रहे हैं। सखी, अव क्या करूँ?

राम—सोने की सीता, तुम हँसती-रोती भी तो नहीं। क्या तुम क्रुद्ध हो? या इस अधम दास को अव भी प्यार करती हो? कुछ पता नहीं। हँसो, हँसो प्राणेश्वरी। मेरी सोने की सीता, हँस दो तनिक। मैं समझ लूँ कि तुम्हारा प्यार मेरे लिए अभी है।

सीता—अरी सखी, आर्यपुत्र का यह विलाप तो सहा नहीं जाता। कैसे इन्हें चैतन्य करूँ?

सखी—देवी, धीरे-धीरे महाराज के शरीर पर हाथ फेरो।

राम—अहा! यह किसने छुआ? प्राण हरे हो गये! सूखते धान

पर पानी पड़ा ! वोलो सीते, वोलो एक वार वह मीठा स्वर-जिसे सुनने को तरस रहा हूँ। अरी प्रियम्वदा सीते !

सीता—इतने दिन वाद सुध ली आर्यपुत्र, अभागिनी दासी तो चरणों ही में है।

राम—कौन वोला यह ? कितना मधुर ! कितना प्रिय।

सीता—(रोती हुई) अरी सखी, आर्यपुत्र की मूर्च्छा जा रही है। अब चलो यहाँ से।

राम—वही-वही-वही-वही स्वर है। सीता प्रिये……सन्ध्या हो रही है। पृथ्वी सुनहरी रङ्ग गई है। उस वरगद की डालियों की जड़ें धरती को चूम रही हैं। कौन पक्षी गा रहा है ? पम्पासरोवर……

सीता—सखी, आर्यपुत्र, पुरानी वातों के सुपने देख रहे हैं।

राम—यही तो पंचवटी है। यही तो हमारी कुटिया थी। उसमें सीता रहती थी—सीते। ओ प्रियम्वदे, सीते !

सीता—हाय, सु प्राणेश्वर, वह अधम दासी जीती-जागती यही है।

राम—कहाँ ? कौन ? तुम ? मैं ? कहाँ……

सखी—महाराज, सावधान हूजिए। यह देवी सीता हैं।

राम—देवी सीता !

सखी—हाँ, महाराज।

राम—सीता……

सखी—हाँ, महाराज। देखिए, वे मूर्छित होने लगीं।

राम—(आँख खोलकर) देवी, तुम्हारा यह मलिन वेश। उलझे हुए वाल। तो तुम देवी सीता हो ?

सीता—यह अभागिनी आपकी दासी सीता है।

राम—जनक की राजदुलारी ?

सीता—हाँ, आर्यपुत्र।

राम—रघुकुल की राजलक्ष्मी ?

सीता—अभागिनी सीता।

राम—हाय ! प्रिये, मेरे रहते तुम्हारी यह दशा हो गई। अरे ! देवी का यह रूप देखने से पूर्व ही मेरी आँखें फूट जायें।

सीता—महाराज, इस जन्म में दर्शन हो गए। जीवन सफल हो गया। अरे ! वे भगवती अरुन्धती और माता कौशिल्या इधर ही आ रही हैं।

राम—उन्हें यह अधम राम कैसे मुँह दिखाएगा।

(कौशिल्या आती हैं)

कौशिल्या—भगवती, वह रामचन्द्र ही हैं न ? अब तो पहचाने भी नहीं जाते। अरे पुत्र राम !

अरुन्धती—महारानी, वहाँ सौभाग्यवती सीता भी हैं।

कौशिल्या—तो सचमुच पुत्र और वहू में मेल हो ही गया।

अरुन्धती—हाँ, महारानी आओ, रामचन्द्र का संकोच दूर करें।

(आगे बढ़कर जाती हैं)

राम—माता, यह कुपुत्र राम आपके चरणों में अभिवादन करता है।

कौशिल्या—रामचन्द्र, मेरे पुत्र आओ। मेरी छाती को ठंडी करो (सीता को देखकर) अरी वेटी सीता, मेरी सुलक्षणा वहू, अरी तपस्विनी, तू धन्य है।

सीता—पूज्ये, आपकी दासी सीता अभिवादन करती है।

अरुन्धती और कौशिल्या—सौभाग्यवती रहो। रामचन्द्र, तो तुमने सीता को ग्रहण किया न पुत्र ?

(एक ऋषिकुमार आता है)

ऋषिकुमार—आप सबको प्रणाम। विदेहराज जनक आप लोगों से मिलने आ रहे हैं।

कौशिल्या—हाय ! मैं कैसे उन राजर्षि को मुँह दिखाऊँगी ?

राम—माता, अपराधी तो मैं हूँ। मैंने ही जनकदुलारी को अनाथ बनाया था।

(जनक आते हैं)

जनक—भगवती अरुन्धती, सीरध्वज जनक आपको प्रणाम करता है। (कौशिल्या को देखकर) अरे ! क्या प्रजा पालने वाले राजा की माता भी यहीं हैं और मेरी बेटी सीता भी ? हाय ! मेरी प्यारी बच्ची।

अरुन्धती—महाराज, महारानी कौशिल्या ने तो इसी क्रोध से अठारह बरस तक रामचन्द्र का मुँह नहीं देखा। रामचन्द्र ने भी अपवाद के डर से यह काम किया था।

कौशिल्या—हाय !

(मूर्छित हो जाती हैं)

अरुन्धती—(घबराकर) महारानी मूर्च्छित हो गईं।

जनक—मैंने बहुत कठोर बात कह दी, बुरा किया। यह महात्मा दशरथ की पत्नी बड़ी सती हैं। अरे मित्र दशरथ, तुम्हीं स्वर्ग में अच्छे रहे। हम जीवित रहकर यहाँ दुःख भोग रहे हैं।

कौशिल्या—(चैतन्य होकर) बेटी जानकी; जब तू नई बहू बनकर महल में आई थी, उस समय का तेरा हीरे-मोतियों से सजा हुआ हंसता मुख मुझे याद है। अरे ! स्वर्गवासी महाराज तो तुझे अपनी कन्या ही कहा करते थे। आज हमारे रहते तेरी यह दशा हो गई।

अरुन्धती—महारानी, धीरज धरो। अन्त में सब भला होगा।

कौशिल्या—भगवती, अब इसकी क्या आशा है ?

(ऋषिकुमार आते हैं)

ऋषिकुमार—सबको प्रणाम। आप सबको गुरुदेव बाल्मीकि स्मरण करते हैं। वहाँ महामुनि वशिष्ठ भी बैठे हैं।

अरुन्धती—चलो रामचन्द्र। महारानी और विदेहराज, चलो। बेटी सीता, सब कोई महात्मा बाल्मीकि के पास चलें।

राम—चलिये भगवती।

[सब जाते हैं]

पन्द्रहवाँ दृश्य

(महात्मा बाल्मीकि, वशिष्ठ और राम, जनक, कौशिल्या आदि)

राम—ऋषिवर, आपके चरणों में यह अधम राम अभिवादन करता है।

बाल्मीकि—राजा राम, तुम्हारी जय हो। कहो, राज्य में सब कुशल तो हैं ?

राम—आपकी दया से सब कुशल हैं।

बाल्मीकि—सुना है राजन्, तुम अश्वमेध यज्ञ कर रहे हो।

राम—हाँ, भगवान् ! मैं आपको निमन्त्रण देने ही आया हूँ।

वाल्मीकि—वहुत अच्छी वात है। हाँ महाराज, इस यज्ञ में राजा की रानी कौन है ?

राम—सीता की सोने की मूर्ति।

वाल्मीकि—क्या कहा ?

राम—सोने की सीता।

वाल्मीकि—सच !

राम—सच।

वाल्मीकि—धन्य हो राम भद्र।

राम—गुरुदेव ! मैं पत्नी-द्रोही धन्य हूँ ? मैं महापापी हूँ।

(लव-कुश आते हैं)

लव—गुरुदेव ! हमसे अपराध हो गया।

वाल्मीकि—कैसा अपराध पुत्रो ?

लव—हमसे इन पूज्य अतिथियों का अपमान हो गया।

वाल्मीकि—कैसा अपमान बच्चों ?

लव—हमने अनजानते अश्वमेध का घोड़ा पकड़ लिया और कुमार चन्द्रकेतु से युद्ध ठान वैठे।

राम—बच्चों, मैंने तुम्हारे वह अपराध क्षमा कर दिये।

(वाल्मीकि से)

ऋषिवर, ये दोनों कुमार किस कुल के हैं ? इन्हें देखकर तो हृदय उछलता है।

वाल्मीकि—महाराज राम, ये तुम्हारे ही समान उच्च कुल के हैं।

राम—(उत्तेजित होकर) क्या कहा गुरुदेव ?

वाल्मीकि—शान्त हो रामचन्द्र। ये दोनों तुम्हारी ही सन्तान हैं। पुत्र लव, कुश, अपने प्रतापी पिता को प्रणाम करो।

राम—मेरे पुत्र, मेरे पुत्र, आओ बेटो। छाती से लग जाओ। हाय रे! राजधर्म! सबका अपनी सन्तान और बच्चों पर अधिकार होता है, केवल राजा का नहीं।

वाल्मीकि—तो रामचन्द्र, तुमने अपने पुत्रों को तो ग्रहण किया न?

राम—हाँ, गुरुदेव।

वाल्मीकि—और सीता को?

राम—सीता, सीता, भगवती सीता, हाय।

(रोते हैं)

वाल्मीकि—राम, तुम्हें संकोच क्या है?

राम—ऋषिवर, जो कारण तब था, वही तो अब भी है।

वाल्मीकि—रामभद्र, सीता पर यह बड़ा अन्याय है।

राम—भगवान्, इस राजधर्म पर ही धिक्कार है।

वाल्मीकि—(क्रोध से) अरे राजा, यह सती अठारह वर्ष तक तुम्हारे लिए रोती रही है। चातक की भाँति तुम्हारे नाम की रट लगाये रही है। अरे! इसके पीले और उदास मुख की ओर तो देखो।

जनक—हाय! बेटी।

कौशिल्या—इतने बड़े राजा की रानी, वीर पुत्रों की माता, रघुकुल की बहू की आज यह दुर्दशा।

[illegible]—माता, मैं राजधर्म में बँधा हूँ। जब तक प्रजा को विश्वास……

जनक—क्या कहा ?—विश्वास ! अरे मेरी बेटी पर अविश्वास ?

सीता—पिताजी, ठहरिये। आर्यपुत्र को मैं फिर से अपनी परीक्षा दूँगी।

राम—यदि वह परीक्षा यहाँ बैठे गुरुजनों की दृष्टि में ठीक हुई तो मैं तुम्हें ग्रहण करूँगा।

सीता—सब सावधान होकर देखें, मैं परीक्षा देती हूँ।

सीता—माता वसुन्धरे, जो मैंने आज तक पति को छोड़कर और किसी का ध्यान भी किया हो, कभी स्वप्न में भी पति पर क्रोध किया हो। यदि मैं पवित्र सती हूँ तो वसुन्धरे माँ। तुम अभी फट जाओ और मुझे अपनी गोद में ले लो।

(बड़े जोर की गड़गड़ाहट होती है। भूचाल आता है। सब चिल्लाते हैं। धरती फटती है। सीता धरती में समा जाती हैं।)

———

जुआ

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

नल—अयोध्या के राजा

पुष्कर—राजा नल के साथ पांसे खेलने वाला

ऋतुपर्ण—राजा

भीमसिंह—विदर्भ के राजा

देवतागण—देवराज इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम

प्रहरी—सेवक आदि

स्त्री पात्र

दमयन्ती—दमयन्ती (विदर्भ की राजकुमारी)

सखियाँ, दासी

पहिला दृश्य

[स्थान—इन्द्रपुरी]

(राजा इन्द्र का दर्बार । इन्द्र और देवता गण बैठे हैं । अप्सरायें नाच रही हैं । गन्धर्व गा रहे हैं । मृदङ्ग, डफ और वीणा बज रही हैं)

(गन्धर्व गाते हैं)

दातारे तू नैया मेरी पार लगादे ।
भव सागर है रैन अँधेरी,
छाय रही घनघोर बदरिया,
पवन झकोरत, जल हिलकोरत,
नाही कोई खिवैया ।
दाता रे तू नैया मेरी पार लगा दे ॥

इन्द्र—धन्य-धन्य, बहुत अच्छा गाया । चित्रसेन और मेनका तुम्हारा नृत्य भी कितना मोहक है । अब थोड़ा विश्राम करो और अमृत पान करो ।

दोनों—जो आज्ञा देवराज ।

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल—देवराज की जय हो । महाराज भूलोक से देवर्षि नारद पधारे हैं । वे सिंह द्वार पर उपस्थित हैं ।

इन्द्र—उन्हें आदर पूर्वक ले आओ ।

(देवर्षि आते हैं)

इन्द्र—आइए देवर्षि, यह आसन है, विराजिए । कहिए, आर्य कुशल तो हैं ?

देवर्षि—सब प्रकार कुशल है। आजकल भूलोक में खूब चहल-पहल हो रही है।

इन्द्र—कैसी चहल-पहल देवर्षि ?

देवर्षि—विदर्भ की राजकुमारी दमयन्ती के स्वयम्वर की। देवराज, वह छत्तीसों कलाओं का अवतार, सोलहों गुणों से विभूषित और अनन्त सुन्दरी बाला है। महाराज ऐसी सुन्दरी बाला तो किसी लोक में न जन्मे और न जन्मी। उसके स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए देश-देश के राजा विदर्भ में एकत्रित हो रहे हैं। पता नहीं किस भाग्यशाली को वह बाला प्राप्त होगी।

इन्द्र—देवर्षि, उस स्वयंवर में जाने का मन तो मेरा भी हो रहा है।

देवर्षि—क्या हर्ज है ? आप भी जाइए। वहाँ तो अग्नि, वरुण और यम पहिले ही से पहुँच गए हैं। हम भी अब अन्य लोक में विचरण करने जाते हैं।

इन्द्र—जैसी देवर्षि की इच्छा।

देवर्षि—देवराज की जय हो।

(जाते हैं)

दूसरा दृश्य

[राजा नल की छावनी पड़ी है। घोड़े हिनहिना रहे हैं। हाथी चिंघाड़ते हैं। बहुत से आदमी बातें करते सुनाई देते हैं। एकाएक जोर की गड़गड़ाहट होती हैं। चारों देवता प्रकट होते हैं]

इन्द्र—यही राजा नल की छावनी है। राजहंस ने इन्हीं की

प्रशंसा राजकुमारी को पहुँचाई है। इससे ऐसी आशा है कि राजकुमारी इन्हीं को वरेगी। अब यह युक्ति करनी चाहिए कि साँप मरे न लाठी टूटे। इन्हीं को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना चाहिए।

सब देवता—ऐसा ही हो।

इन्द्र—(नल से) सूर्यवंश के शिरोमणि राजा नल की जय हो। हम अभ्यागत हैं।

नल—अभ्यागत का स्वागत है।

इन्द्र—राजन् हम अर्थी भी हैं।

नल—आप माँगिए, क्या चाहिए ?

इन्द्र—वचन दीजिए राजन् वचन।

नल—दिया वचन माँगिए क्या माँगते हैं ?

इन्द्र—तब सुनो, अब लुकने छिपने की जरूरत नहीं है। हम देवराज इन्द्र हैं।

नल—आपको प्रणाम है देवराज।

इन्द्र—ये अग्निदेव हैं ?

नल—प्रणाम देव।

इन्द्र—ये यमराज हैं।

नल—भगवन् प्रणाम।

इन्द्र—ये वरुण देव हैं।

नल—प्रणाम, प्रणाम, मैं कृतार्थ हुआ देवगण, कहिए यह दास आपकी क्या सेवा कर सकता है ?

इन्द्र—हम दमयन्ती के स्वयंवर में विदर्भ जा रहे हैं।

नल—बहुत अच्छी बात है। मैं भी वहीं जा रहा हूँ।

इन्द्र—परन्तु हम जानते हैं कि दमयन्ती तुम्हीं को वरमाला

पहनाएगी क्योंकि राजहंस ने पहिले ही से उसका हृदय तुम्हारी ओर कर दिया है।

नल—यह सब आप देवताओं के आशीर्वाद का फल है।

इन्द्र—परन्तु हम चाहते हैं कि दमयन्ती हम में से किसी एक को वरे।

नल—यह तो उसका सौभाग्य होगा।

इन्द्र—और हम यह भी चाहते हैं कि तुम हमारे दूत बनकर वहाँ जाओ और हम चारों में से किसी एक से व्याह करने को उसे राजी करो।

नल—महाराज यह कैसे हो सकता है। मैं तो स्वयं उससे विवाह की अभिलाषा से जा रहा हूँ। राजकुमारी भरी सभा में जिसे चाहेगी वरेगी।

इन्द्र—वह तुम्हीं को वरेगी क्योंकि तुम्हारा दूत वहाँ पहिले ही पहुँच चुका है।

नल—ऐसा होगा तो मैं इसे अपना अहोभाग्य समझूँगा।

इन्द्र—पर हम ऐसा नहीं होने देंगे। उसे हममें से किसी एक को वरना होगा।

नल—देवता के सामने भला मनुष्य क्या कर सकता है, जो होगा देखा जायगा।

इन्द्र—तो तुम हमारे दूत नहीं बनोगे !

नल—महाराज यह काम मुझसे नहीं होगा।

इन्द्र—तो हम तुम्हें अभी शाप देकर पत्थर कर देंगे।

यम—और हम तुम्हें मार डालेंगे।

वरुण—हम समस्त विदर्भ देश और देश-देश के राजाओं को डुबो देंगे।

अग्नि—हम संसार को भस्म कर देंगे नल !

नल—देवगण, कुपित मत हूजिए।

इन्द्र—तो अपरा वचना पूरा करो।

नल—हाय देवराज!

इन्द्र—वचन दे चुके हो वचन, तुम सूर्यवंशी हो।

नल—(सोचकर) जैसी आपकी आज्ञा। परन्तु मैं पहरे के बीच कुमारी से मिल कैसे पाऊँगा।

इन्द्र—हमने तुम्हें अदृश्य कर दिया। अब से तुम जहाँ चाहो जाओ, तुम्हें कोई देख नहीं सकेगा।

यम—हम तुम्हें इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति देते हैं।

वरुण—तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही पात्र में जल भर जायगा।

अग्नि—तुम्हारे आदेश से आग जल जायगी।

नल—धन्यवाद देवगण, अब मैं चला।

सब देवता—चलो, हम भी चलें।

(गरज होती है, बिजली चमकती है, शोर होता है)

तीसरा दृश्य

[दमयन्ती का महल]

(सखियां गेंद खेल रही है और खिलखिला कर हंस रही हैं)

एक सखी—कैसी ताककर मारी है, अच्छा ठहर (जोर से खिलखिलाने की आवाज)।

(चिल्लाकर) अरे यहाँ कोई है, उसने मुझे छुआ है।

दूसरी—दुर पगली, यहाँ कौन है ? ले मैं जाती हूँ वहाँ। (चिल्लाकर) बाप रे यहाँ तो कोई है। मेरा हाथ भी पकड़ा है।

तीसरी—वाह कैसी बात है ! लो मैं जाती हूँ, देखू कौन भूत प्रेत है ((वहाँ जाती है । चिल्लाकर) बचाओ-बचाओ किसी ने मेरा दुपट्टा खींचा।

दमयन्ती—तुम्हें क्या हो गया है सखियो ?

सब—आप खुद ही देखलें कुमारी वहाँ कोई है।

दमयन्ती—आप कौन हैं देव, यक्ष, किन्नर या कोई भी हों जब आपने अपने चरण कमलों से मेरा महल पवित्र किया है, तो दर्शन देकर इन आँखों को भी पवित्र कीजिए।

(नल प्रकट होते हैं। देखकर दमयन्ती चीख मारकर बेहोश हो जाती है)

नल—अरे राजकुमारी बेहोश हो गईं !

सखियाँ—आपको देखकर बेहोश हो गईं।

नल—मेरा भारी अपराध हुआ अब क्या करूँ ?

दमयन्ती—मैं अच्छी हूँ। सखियों पूज्य अतिथि को आसन दो।

नल—मैं दूत हूँ। इसका आदर प्रदर्शन करने की आवश्यकता नहीं है। आज्ञा हो तो मैं अपने स्वामियों का अभिप्राय निवेदन करूँ।

एक सखी—हमारी कुमारी जी का निवेदन स्वीकार कर पहिले विराजिए फिर जो कहना हो कहिए।

नल—जैसी आपकी इच्छा। (बैठकर) राजकुमारी के स्वयंवर में इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण चारों देवता आ रहे हैं। उन्होंने मुझे कुमारी जी से यह कहलाया है कि उन चारों में से एक को वरण करें।

सब सखी—सब देवताओं को नमस्कार। परन्तु आपका दूतत्व व्यर्थ हुआ। आप जाकर उनसे कह दीजिए कि राजकुमारी ने मन वचन से प्रतापी राजा नल को वर लिया है। उन्हें छोड़कर और किसी के गले में जयमाल नहीं डालेगी।

नल—आपकी राजकुमारी ने कुछ अच्छा विचार नहीं किया। ऐसे लोक परलोक के देवताओं को छोड़कर साधारण राजा नल को वरा। कहाँ देवतागण, कहाँ राजा नल क्या आप नहीं जानतीं कि देवताओं को नाराज करके फिर कोई जीवित नहीं रह सकता। इसलिए मुझ दास पर कृपा कर राजकुमारी यदि अग्नि को वरें तो अत्युत्तम है। न हो तो यमराज ही को वरें जिनसे तीनों लोक काँपते हैं। या देवताओं के राजा इन्द्र को वरिए वरुण भी बड़े अच्छे देवता हैं।

दूसरी सखी—मालूम होता है आपका महाराज नल से कुछ वैर है इसी से आप उनकी निन्दा और देवताओं की बढ़ाई करते हैं। परन्तु इस विवाद से क्या? राज सभा में सब देवता और राजाओं के सामने राज-कुमारी राजा नल को वरेंगी।

नल—परन्तु देवताओं को नाराज करके राजकुमारी का अनिष्ठ होगा।

राजकुमारी—(रोती हुई) अरी सखी, अब प्रवंचना की जरूरत नहीं। उनसे कहो कि दासी को भुलावें नहीं। यह तो तन मन से आपकी हो चुकी फिर चाहे भी जो हो।

नल—अरे क्या राजकुमारी ने मुझे पहचान लिया। तो कुमारी

सुनिए मैं धर्म से बंधा हूँ। मैं अब दूत हूँ। मैं अपने कर्त्तव्य का पालन करूँगा।

राजकुमारी—धर्म का पालन आप कर चुके। अब कल राज सभा में मैं भी अपने धर्म का पालन करूँगी। अरी सखियों, आर्य पुत्र की अभ्यर्थना करो।

सब सखियाँ—जो आज्ञा राजकुमारी—(सब नाचती गाती हैं)

सुन्दर रूप सुहाय, संवरिया नागन सी लहराय।
लटपट चाल चलत अलबेली॥
झूमत झोके खाय।
मटकती नागन सी बल खाय।

———

चौथा दृश्य

[आँधी चलती है, चार देवता आते हैं]

इन्द्र—दमयन्ती नल को ही वरेगी।

यम—तो हम भी नलका रूप धारण कर नल के पास आ बैठेंगे देखें, फिर वह कैसे नल को वरेगी ?

वरुण—क्या हम देवताओं के रहते एक मनुष्य विजयी होगा ?

इन्द्र—यही सही चलो फिर, स्वयंवर समारोह हो रहा है।

(शहनाई और बाजे बजने की आवाज आ रही है। द्वारपाल पुकारता है)

द्वारपाल—सावधान, सब देव, दानव नरपति, सावधान हो जायँ विदर्भ राजकुमारी दमयन्ती जयमाल लिए आ रही हैं।

(दमयन्ती सखियों सहित आती है)

दमयन्ती—(स्वगत) अरे यह क्या मामला है ? राजा नल के वेष और आकृति के ये चार पुरुष पास-पास बैठे हैं। मैं किनके गले में जयमाल डालूँ।

समझी, यह सब देवताओं की करामात है।

(हाथ जोड़कर)।

(देवताओं से) हे दिग्पाल के देवता गण, मैं तो राजा नल को वर चुकी अब आप मेरे पतिव्रत धर्म की रक्षा कीजिए। आप अपना-अपना रूप धारण कर लें और मुझ दासी पर ऐसी कृपा करें कि मुझे राजा नल मिल जायँ।

इन्द्र—अच्छा-अच्छा, अजी अब इसे कष्ट न दो। लो, हमने अपने रूप धारण कर लिए। तुम्हारे सच्चे प्रेम से प्रसन्न हुए। तुम खुशी से नल को वरो।

दमयन्ती—धन्य देवगण (माला नल के गले में डालती है)।

राजा लोग—हाय-हाय बुरा हुआ। हम सबका अपमान हुआ।

ऋषिगण—(हथियार उठाकर) (हथियारों की झनझनाहट) हम कभी भी राजकुमारी को नहीं जाने देंगे।

नल—(धनुष चढ़ाकर) मैं भी इस धनुष की सौगन्ध खाकर कहता हूँ जिसे अपने प्राण खोने हों वह आगे आवे।

ऋषि—बस करो। राजागण अपने-अपने घर चलो। सब अपने हथियार उठाकर चल देते हैं। शहनाई बजती है और ब्राह्मण वेद मन्त्र पाठ करते हैं। सखियाँ गाती हैं।

पाँचवाँ दृश्य

[राजा नल और पुष्कर]

पुष्कर—महाराज की जय हो। आज लक्ष्मी पूजा का दिन है। आइए हम एक बाजी पासे खेलें।

राजा—(हँसकर) अच्छा भाई पुष्कर जैसी तुम्हारी मर्जी। चौसर बिछाओ।

पुष्कर—जो आज्ञा महाराज। यह चौसर है। पहिले आप पासे फेंकिए।

राजा—(पासा फेंक कर) देखो।

पुष्कर—अब मेरी बारी है। (फेंक कर) यह मारा, पूरे पच्चीस। लाइए मोतियों की यह माला महाराज!

राजा—(हँसते-हँसते) अच्छा भाई लो। मगर अबकी बार मैं ही जीतूँगा। लाओ पासे।

पुष्कर—देखा जायगा लीजिए (चिल्ला कर) वाहवा महाराज आप फिर हारे लीजिए, मैंने अपना सर्वस्व दाव पर लगाया।

राजा—लो, मैंने भी अपना राज्य दाव पर लगाया।

मन्त्री—महाराज, यह आप क्या कर रहे हैं ठहरिए।

राजा—नहीं-नहीं हमने सारा राज्य लगाया।

दमयन्ती—(रोती हुई) ठहरिए, आर्यपुत्र ऐसा न कीजिए।

राजा—पासे फेंको पुष्कर, हमने सारा राज्य दाव पर लगाया।

पुष्कर—(हँसकर) जो आज्ञा महाराज। (पासे फेंक कर) लीजिए मैं जीता। अब राजपाट मेरा है। मैं राजा हूँ।

राजा—एक बार और बाजी खेली जाय।

पुष्कर–राजपाट तो आप हार चुके। अब दांव पर क्या लगायेंगे ?

राजा– क्या लगायें ?

पुष्कर—आप दमयन्ती को दांव पर लगा सकते हैं।

राजा – दमयन्ती को ! अच्छा यही सही।

दमयन्ती—नहीं-नहीं मैं नहीं खेलने दूंगी। नाथ, छोटे-छोटे बच्चों को देखिए। मेरी लाज को देखिए, जो होना था हो चुका। अब बस कीजिए।

राजा—तो भाई पुष्कर, बस खेल बन्द करो।

पुष्कर—जैसी इच्छा, तो उतारिए रत्न, आभूषण, मुकुट, पाटम्बर। अरे दासों, इस दास को एक साधारण वस्त्र दे दो।

नल—लाओ भाई कोई वस्त्र दे दो। अब तो मैं दास ही हूँ।

पुष्कर—(दमयन्ती से) जाना चाहती हो या राजरानी बन कर मेरे महल में रहोगी !

दमयन्ती—अरे नराधम, गीदड़ भी सिंहनी पर द्रष्टि डालने लगा चलिए महाराज चलें।

पुष्कर—(व्यंग से) चलिए महाराज चलें ! अब महाराज मैं हूँ। उतारो सब गहने कपड़े। दासी के वस्त्र पहिनो। कोई है ? जाओ, मन्त्री से कहो—राजपाट सब हमारा है। ये दोनों दास दासी आज से वहिष्कृत हैं। नगर में ढिंढोरा पिटवा दो जो कोई इन्हें आश्रय देगा उसे सूली दे दी जायगी।

राजा—(ठण्डी सांस भरके) चलो दमयन्ती चलें।

दमयन्ती—चलिए, आर्यपुत्र चलिए।

(दोनों जाते हैं, महल के दास दासी रोते हैं)

———

छटा दृश्य

[वन में नल और दमयन्ती]

नल—कितने दिन बिना अन्न जल लिए हो गए। हम द्वार-द्वार भटके किसी ने आश्रय नहीं दिया। मेरी ही प्रजा मुझसे जी चुराने लगी। जिनके लिए देवता भी लालायित थे, वह रानी यहाँ धरती पर थक कर सोई पड़ी है। अच्छा हुआ बालक अपने नाना के घर भेज दिए गए। अब भला वे महल राजठाठ कहाँ? अब तो धरती ओढ़ना और धरती ही बिछौना है। यह सब जुए की बदौलत। (कुछ पक्षियों के चहचहाने की आवाज़) अहा ये पक्षी मौज में उड़े जा रहे हैं, उन्हें पकड़ पाऊँ तो मांस खाने को मिले। पर पास में यह धोती ही है। जंगल में लज्जा काहे की। धोती खोल कर पक्षियों पर फेंकूँ शायद फँस जाय। (धोती फेंकने और पक्षियों के चिल्लाकर फिर उड़ने की आवाज़) हाय-हाय वे तो मेरी धोती भी लेकर उड़ गये। अब तन कैसे ढकूँ। रानी की आधी धोती फाड़लूँ (धोती फाड़ने का शब्द) अभी सो रही है। मैंने उससे कहा वह बाप के घर चली जाय, पर नहीं मानी। यदि मैं चुपचाप चल दूँ तो यह पिता के घर किसी प्रकार पहुँच ही जायगी। (कुछ चुप रहकर) चलूँ फिर विदा, मेरी प्यारी महारानी विदा। यह ज्वारी राजा नल आज सब कुछ त्याग कर जा रहा है। आह (रोता हुआ जाता है)।

दमयन्ती—(चौंककर) है, यह कैसा सुपना! अंग-अंग काँप रहा है। हे परमेश्वर, यह मेरी धोती किसने फाड़ी। अब कैसे अङ्ग ढकूँ? आर्यपुत्र कहाँ गए! कहाँ गए? आर्य पुत्र! आर्यपुत्र!!

(वन में हवा चलने का सांय-सांय शब्द । भयानक पशुओं की आवाज) हाय आर्य पुत्र तुम कहाँ मुझ अभागिन को छोड़कर चले गए ! अरे खेल मत करो ! महाराज कहाँ छिपे हो ? चले आओ । प्यारे यह खेल करने का समय नहीं है ।

(शेर की दहाड़) ये वन पशु मुझे खा जायेंगे । ओ आर्यपुत्र, ओ आर्य पुत्र !

(एक व्याध आकर जोर से हँसता है)

दमयन्ती—(डरकर) कौन हो तुम ?

व्याध—वाह कैसा रूप यौवन है । तुम जरूर वनदेवी हो । मैं तो आया था शिकार के लिए, परन्तु मिल गईं तुम ! चलो मेरे घर । मजे में रहना । मैं शिकार मार लाऊँगा, तुम पकाना । मैं मछली पकड़ूँगा, तुम खेंच लाना । मजा रहेगा (जोर से हँसता है । पकड़ने को करता है) ।

दमयन्ती—आर्यपुत्र, आर्यपुत्र रक्षा करो, इस राक्षस से रक्षा करो ।

(एकाएक एक सांप व्याध को डस लेता है । वह चीख कर गिर पड़ता है)

व्याध—डंस लिया, सांप ने डंस लिया । अब बच नहीं सकता ।

दमयन्ती—अब भागना चाहिए । हाय लाज कैसे ढकूँ ?

(भागती है)

(दूर से घोड़ों की टाप सुनाई देती है । एक सवार आता है) ।

सवार—डरो मत, भागो मत । मैं चन्देरी का राजा हूँ । तुम कौन हो कहाँ ?

दमयन्ती—विपत्ति की मारी स्त्री हूँ। भाग्य ने हमें ये दिन दिखाए।

राजा—अच्छा, तुम मेरे साथ चलो। मेरी रानी को एक दासी की जरूरत है।

दमयन्ती—तीन वचन दीजिए तो चलूँ। एक यह कि मैं पर-पुरुष से न बोलूँगी। दूसरा यह कि किसी का जूठा न खाऊँगी। तीसरा किसी के पैर न धोऊँगी।

राजा—मैंने तीनों वचन दिए। आओ अब ?

दमयन्ती—चलो भगवान आपका भला करें।

सातवाँ दृश्य

[राजा ऋतुपर्ण की राजधानी में राजा नल आते हैं]

नल—(स्वगत) कौन इस मुसीबत में काम आया। कैसा कुडौल कुरूप वेश बन गया है। कौन कहेगा यही अयोध्या का प्रतापी राजा नल है। सुना है राजा ऋतुपर्ण पासा फेंकने में बड़ा चतुर है। उसकी कृपा हुई तो पासों का खेल सीखकर पुष्कर से बदला लूँगा।

(दूर से सेवकों की आवाज, हाथी के घण्टे की आवाज)

अहा, यह तो राजा की सवारी आ रही है। हटकर खड़ा हो जाऊँ। राजा की नजर पड़ गई तो निवेदन करने।

नल—महाराजाधिराज की जय हो।

राजा—परदेशी तुम कौन हो ?
नल—महाराज एक आफत का मारा हूँ। आधसेर आटे का प्रार्थी हूँ। घोड़ा हाँकने में मेरे समान जगत में दूसरा नहीं है। मैं राजकाज में भी सलाह दे सकता हूँ। भोजन बनाने में मेरी बराबरी कोई नहीं कर सकता। और शिल्प विद्या में भी मैं पूर्ण गति रखता हूँ।
राजा—तुमने जो कहा है यदि सत्य है तो तुम अवश्य मेरे पास रहने योग्य हो। तुम्हारे गुणों की कद्र करूँगा। आज से तुम मेरे नौकर हुए। जाओ, तुम मेरे अस्तबल के प्रधान हुए।
नल—जो आज्ञा महाराज की।

(जाते हैं)

— - — —

आठवाँ दृश्य

[विदर्भ का राजमहल। दमयन्ती, राजा भीम और उनकी रानी]

दमयन्ती—(रोती हुई) अब जीवन को किस आशा में धारण करूँ। आपके दर्शन हो गए। अब मुझे अग्नि की शरण चाहिये।
राजा—नहीं, नहीं, सुपर्ण कुछ आशा जनक समाचार लाया है। वह कहता है राजा ऋतुपर्ण के अस्तबल में एक बाहुक नाम का सईस है। जब सुपर्ण ने तुम्हारा बताया वाक्य 'ऐ छलिया तुम मेरे आधे कपड़े को फाड़ वन में कहाँ चले गए' तो वह सईस रोने लगा और

वार-वार यहाँ का समाचार पूछने लगा। और कहने लगा यदि पति विपत्ति में अपराध भी करे तो पतिव्रता को क्रोध नहीं करना चाहिये। वह वाहुक कहता है घोड़ा हाँकने और भोजन वनाने में पृथ्वी भर में एक ही है। पर उसका रूप रङ्ग जो वह वताता है, उसी में संदेह होता है।

रानी—तो उसे यहाँ बुलाने की कोई युक्ति की जाय।

राजा—मैंने एक युक्ति सोची है। ऋतुपर्ण के पास दमयन्ती के फिर से स्वयंवर का समाचार भेजा जाय और तिथि इतनी निकट रखी जाय कि सिवाय नल के और किसी का इतने कम समय में पहुँचना सम्भव ही न हो।

रानी—युक्ति तो ठीक है पर इससे बड़ी वदनामी होगी।

राजा—वदनामी क्यों होगी। यह समाचार तो ऋतुपर्ण ही को भेजा जायगा।

रानी—तो जल्द यह काम कर डाला जाय।

राजा—मैं अभी सुदेव ब्राह्मण को भेजता हूँ।

दमयन्ती—इस अभागिन के भाग्य में अभी न जाने क्या-क्या भोगना वदा है।

रानी—वेटी धीरज धरो। अन्त में सव ठीक हो जायगा।

———
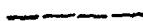
नवाँ दृश्य

[ऋतुपर्ण की राजसभा]

द्वारपाल—महाराज की जय हो। विदर्भ देश के राजा का सन्देश लेकर एक ब्राह्मण आया है और द्वार पर खड़ा है।

राजा—उसे आदरपूर्वक ले आओ।

(ब्राह्मण आता है)

ब्राह्मण—महाराज की जय हो।

राजा—किस कार्य से पधारना हुआ ब्राह्मण देवता।

ब्राह्मण—महाराज विदर्भ की राजकुमारी का स्वयम्वर अयोध्या के राजा से हुआ था, परन्तु राजा नल जुए में राज-पाट हार कर कहीं चल दिए। पता नहीं जीते हैं या मर गए। इसलिए दमयन्ती का दूसरा स्वयम्वर रचा जा रहा है। राजन आप अवश्य पहुँचिए।

राजा—(चिन्तित होकर) परन्तु पत्र में जो तिथि लिखी है। वह तो बहुत निकट है। इतनी जल्द पहुँचना असम्भव है। (कुछ सोचकर) वाहुक क्या तुम समय पर मुझे स्वयम्वर में पहुँचा सकते हो ?

वाहुक—(उदासी से) यदि महाराज की इच्छा हो तो मैं समय पर आपको पहुँचा दूँगा। मैं घोड़ों को छाँटता हूँ, आप तैयार हूजिए।

राजा—धन्यवाद वाहुक, तुम तैयारी करो। मैं अभी चलूँगा।

वाहुक—जो आज्ञा महाराज।

———

दसवाँ दृश्य

[विदर्भ का राजमहल, रथ पहुँचने का शब्द]

राजा ऋतुपर्ण—बाहुक, हम अब राजा भीमसिंह के महल के निकट पहुँच गए हैं। पर यहाँ तो स्वयम्वर के कोई रङ्ग-ढङ्ग नजर नहीं आ रहे हैं। यह क्या बात है ?

बाहुक—महाराज कुछ बात होगी ही। हमें अपनी ओर से यह प्रकट नहीं करना चाहिए कि हम स्वयम्वर की खबर पाकर आए हैं।

राजा—यही ठीक है। अच्छा तुमने खबर तो दे ही दी है। अरे, जल्दी में हमने कुछ प्रबन्ध भी नहीं किया।

बाहुक—लीजिए, ये राजा भीमसिंह मन्त्रियों सहित आगवानी को आ रहे हैं।

(भीमसिंह और मन्त्रीगण आते हैं)

भीमसिंह—धन्य भाग महाराज, जो आप मेरे द्वार पर आए।

ऋतुपर्ण—राजन्, शिकार खेलते-खेलते आपके दर्शनों को चला आया हूँ।

भीमसिंह—बड़ी कृपा की। अब आप विश्राम करें। थके होंगे।

ऋतुपर्ण—जैसी आज्ञा। बाहुक तुम घोड़ों का सब प्रबन्ध कर दो।

बाहुक—जो आज्ञा।

मन्त्री—चलिए महाराज विश्राम कीजिए।

राजा—बहुत अच्छा। (जाते हैं)

भीमसिंह—आप बाहुक जी तनिक हमारे साथ आइए। घोड़ों की चिन्ता न कीजिए। उनका प्रबन्ध हो जायगा।

वाहुक—महाराज, मैं तनिक घुड़साल में......
भीमसिंह—आइए, घुड़साल में सब ठीक हो जायगा ।

(जाते हैं)

(महल से केसनी दासी आती है)

राजा—अरी केसनी ये वाहुक जी हैं, इन्हें दमयन्ती के पास लेजा ।
केसनी—जो आज्ञा, चलिए महाराज ।
वाहुक—मैं महाराज नहीं, सईस हूँ । मेरा नाम वाहुक है ।
केसनी—यह वात आप हमारी राजकुमारी को वताइए । देखिए, वे दोनों राजकुमार चले आ रहे हैं ।
वाहुक—कौन हैं वे ?
केसनी—दमयन्ती के पुत्र हैं ।
वाहुक—आओ वच्चो मेरी छाती से लगो ।
राजकुमार—तुम कौन हो ?
वाहुक—(रोकर) वेटा मैं एक अभागा आदमी हूँ ।
राजकुमार—तुम रोते क्यों हो ?
वाहुक—वेटा मैं दुखिया हूँ ।
राजकुमार—तुम्हारे वस्त्र इतने मैले क्यों हैं ?
वाहुक—वेटा मैं गरीव आदमी हूँ । (रोने लगता है)
केसनी—इन वच्चों को तो आपने वहुत प्यार किया ।
वाहुक—क्या कहूँ मुझे अपने वच्चे ? याद आ गये । वे भी ऐसे ही थे । हाँ, तुम मुझे कहाँ ले जा रही हो ?
केसनी—रानी दमयन्ती के पास ।
वाहुक—क्यों ?
केसनी—ऋतुपर्ण राजा के यहाँ जो ब्राह्मण गया था । उसके मुँह से 'ऐ छलिया मेरे अङ्ग पर से आधा कपड़ा फाड़-

कर तुम कहाँ चले गए।' इसको सुनकर आपने जो बात कही थी वही बात रानी दमयन्ती आपके मुँह से सुनना चाहती है।

बाहुक—केसनी, कुलवती स्त्रियाँ पति से त्यागी जाकर भी अपनी रक्षा करती हैं। पति पर कभी क्रोध नहीं करतीं। राज्य से च्युत भूखे नंगे विपत्तियों के मारे पति पर दमयन्ती को क्रोध नहीं करना चाहिये।

(ज़ोर से रोते हैं)

केसनी—यह देवी दमयन्ती हैं। अब आप जो कुछ कहें इन्हीं से कहें।

(दमयन्ती आती है)

बाहुक—हाय-हाय! मैले वस्त्र पहिने, बिखरे बाल, सूखा मुँह मेरी प्यारी का यह वेश! पर इससे क्या?

दमयन्ती—आपने कभी कोई ऐसा धर्मात्मा आदमी देखा है, जो अचेत सोती हुई निरपराधिनी स्त्री को निर्जन वन में छोड़कर चला गया हो। जिसके साथ उसने अग्नि की साक्षी में प्रतिज्ञा की हो, बारम्बर प्रतिज्ञा की हो कि प्राण रहते कभी तुम्हें न छोड़ूँगा। वे वचन कहाँ गए।

नल—(रोकर) रानी, मुझसे जो अपराध हुआ, बुद्धि भ्रष्ट हो जाने से हुआ। परन्तु अब इन बातों से क्या है? अब तो तुम पराई हो जाओगी।

दमयन्ती—बहुत हुआ। अब आप अपना रूप धारण कीजिए। यह सब आपके बुलाने की चतुराई थी। स्वयम्बर की बात झूँठ थी।

नल—(प्रसन्न होकर)धन्य सती, अब मैं अपने रूप को धारण करता हूँ। देखो।

दमयन्ती—अब इन चरणों से कभी दूर न कीजिए।

(भीमसिंह और ऋतुपर्ण आते हैं)

ऋतुपर्ण—वाह महाराज नल, आपने खूब खेल खेला। भीमसिंह जी ने सब बातें बताई हैं। परन्तु मुझसे जो अज्ञान में भूल-चूक हो गई हो उसे क्षमा करना।

नल—महाराज, आपकी कृपाओं का बदला मैं चुका नहीं सकता।

ऋतुपर्ण—तो अब मैं आपको पासा फेंकने के वे सब पेंच बताता हूँ जिससे अब आपको कोई नहीं जीत सकेगा। आप जाकर पुष्कर से अपना राज जीत लें। और यदि वह आना-कानी करे तो युद्ध करें मैं अपनी सब सेना देता हूँ।

भीमसिंह—और मैं भी अपनी सब सेना देता हूँ।

नल—कैसे कृतज्ञता प्रकट करूँ?

भीमसिंह—अब सब कोई चलकर विश्राम करें।

सब—चलिए फिर।

(सब जाते हैं)

———

उत्सर्ग

नाटक के पात्र

पुरुष

अकबर—दिल्ली के सम्राट्
जयमल—चित्तौर के अधिपति
पेरवसिंह—जयमल के भविष्य जामाता

बीरबल अब्बुलफ़ज़ल अब्दुलक़ादिर टोडरमल	अकबर के दर्बारी

सलावतखां—अकबर के सेनापति,
सिपाही, चोवदार आदि

स्त्री

रानी—जयमल की स्त्री
अखिला—जयमल की बड़ी कन्या
कमला—जयमल की छोटी कन्या
अन्य राजपूतानियां

पहिला दृश्य

[स्थान—चित्तौड़ के निकट का देवी का मन्दिर]

(समय—प्रातःकाल)

(अखिला श्वेत वस्त्र धारण किये, पुष्पाभूषणों से अलंकृत, मधुर स्वर से देवी का स्तवन कर रही है)

गायन—धुन भीम पलासी

भूलि जनि अबला मात करो।
वीर जननि और वीर सुता को, अबला नाम बुरो ॥भूलि०॥
पजरे भानु तेजसों जिनके, धरणि धसक धँसि जात।
तिनकी तिय अबला कहलावें, महा अपूरब बात ॥भूलि०॥
सुत पति पिता नामतें, हम नहिं चाहत सुयश सुनाम।
स्वयं सतेज क्षत्रिया वीरा, सबला बनें ललाम ॥भूलि०॥
अटल छत्र में वीर भूमि की, वीर-प्रसविनी बाम।
रणचण्डी रणशक्ति होय, रिपु-दलन करें अविराम ॥भूलि०॥

(पेरवसिंह का प्रवेश)

पेरवसिंह-(स्वगत) वाह! कैसा मुग्धकारी गान है। जैसा स्वरूप, वैसा ही स्वर। जैसा स्वर, वैसा ही विषय। जैसा विषय, वैसा ही भाव। (आगे बढ़कर प्रकट में) अखिले, अखिले, तुम यह क्या गा रही हो?

अखिला-(चौंककर पूजा-स्थान से उठती हुई) पेरवसिंह, तुम यहाँ?

पेरवसिंह—(हंसकर) हाँ, मैं यहाँ, क्या अचरज होता है?

अखिला—(गँभीरता से) नहीं, अचरज नहीं। क्या तुम माता का दर्शन करने आये हो? अच्छा आगे बढ़ो—यह लो पुष्प-गंध माँ को चढ़ा दो।

पेरव—(हँसता हुआ) मैं तुम्हारा दर्शन करने आया हूँ।

अखिला—मेरा? छिः! मेरा यहाँ आना तुम्हें कैसे विदित हुआ?

पेरव—(हँसते हुए) तुम्हारा वह मनोमुग्धकारी गान सुनकर। वाह! तुम कैसा अच्छा गाती हो अखिले! जैसे तुम्हारा रूप नेत्रों को हरा कर देता है, वैसा ही तुम्हारा गान हृदय को लहरा देता है। एक बार फिर तो गाओ अखिले!

अखिला—तुमसे किसने कहा कि मैं गाती हूँ?

पेरव—अरे! अभी तुम गा नहीं रही थीं!

अखिला—वह! वह क्या गाना था? वह तो थी माँ की पूजा, स्तुति, प्रार्थना। पेरव, वह क्या गाना था?

पेरव—पूजा? वाह! कैसी प्यारी पूजा है। अच्छा फिर एक बार पूजा करो न अखिले!

अखिला—क्यों?

पेरव—मैं देखूंगा।

अखिला—छिः! पूजा क्या देखने की वस्तु होती है? पूजा क्या कौतुक है? छिः!

पेरव—(हँसकर) अच्छा तुम्हारी इस पूजा का क्या अर्थ है?

अखिला—अर्थ, तुम्हारे इस शस्त्र-धारण का क्या अर्थ है? रक्त बेचने का क्या अर्थ है? गृह-सुख छोड़कर समरक्षेत्र में मरने का क्या अर्थ है?

पेरव—अर्थ है। अखिले, वह तुम लोगों के समझने की वस्तु नहीं है—पर तुम्हारे इस गान का, पूजा का क्या अर्थ है ?

अखिला—अर्थ है वही।

पेरव—वही ! अर्थात् जो भयंकर शस्त्रों की मार का अर्थ है—जिसकी विभीषिका से सिंहों के हृदय दहल उठते हैं, वही अर्थ तुम्हारे इस मोह-संगीत का भी है, जिसकी ध्वनि से लहराकर हृदय आप ही खिंचा चला आता है ? खूब !

अखिला—सन्देह मत करो। देव-मन्दिर में सन्देह करना पाप है। जैसी तुम्हारी धारणा है, मैं वैसी अबोध नहीं हूँ। बताओ तुम्हारे उस लोहू और लोहे का क्या अर्थ है ?

पेरव—आन और धर्म की रक्षा। जिसके आधार पर जातियाँ जीवित रहती हैं।

अखिला—बस, वही मेरी इस पूजा का भी अर्थ है।

पेरव—(जोर से अट्टहास करता है)

अखिला—(गम्भीरता से) हँसो मत। देव-मन्दिर हँसी का स्थान नहीं होता। शक्ति की माता के सम्मुख स्त्री-जाति का अपमान मत करो।

पेरव—अखिले, सचमुच हँसी की बात है। कहाँ स्वभाव-भीरु अबला जाति, और कहाँ कठिन रक्षा-व्रत ?

अखिला—क्या स्त्री-जाति ऐसी तुच्छ है पेरव ?

पेरव—नहीं, किन्तु प्राणों का मोह छोड़, नंगी तलवार लेकर शत्रुओं पर टूट पड़ना और लोहे की कठिन मार में स्त्री-पुत्र-बन्धु-मित्रों के स्नेह से भरी छाती अड़ाकर मरना खेल नहीं है।

अखिला—(उत्तेजित होकर) और क्षण-भर में, बिना किसी प्रतिकार के, शान्ति-पूर्वक धधकती चिता में बैठकर विश्व-ध्वंसिनी ज्वाला का आलिंगन करना भी कोई मधुर अभिनय नहीं है।

भैरव—(काँपकर) चुप रहो अखिले। ऐसी भयंकर कल्पना का इस आनन्द के समय क्यों स्मरण करती हो?

अखिला—कल्पना? दृढ़ निश्चय और अटल कर्त्तव्य को तुम कल्पना कहकर पुकारते हो?

भैरव—पर उस दूर—अति दूर के कर्तव्य को। ओफ्! उस दुर्घटना को इस समय कहने-सुनने का क्या प्रयोजन है? यह अमङ्गल! (घबराकर) नहीं-नहीं तुम्हारे मुख से नहीं। यह प्रसंग तुम्हारी वय के योग्य नहीं है।

अखिला—भैरवसिंह, राजपूत मृत्यु के व्यवसायी हैं—उनके लिए मङ्गल-अमङ्गल क्या है? तुम पुरुष, जो रात-दिन तीक्ष्ण शस्त्रों का आलिंगन किए रहते हो—प्रतिक्षण युद्ध के लिये उत्सुक रहते हो, क्या तुम्हारा जीवन भी अमङ्गल है?

भैरव—(उत्तेजित होकर) हमारा जीवन, हमारी मृत्यु, हमारा लोहू, हमारा शौर्य, हमारे लिये न सही, हमारे देश के लिये अखण्ड मंगलमय है। प्रत्येक वीर को अपना मंगल देश और आन के नाम पर विसर्जन कर देना पड़ता है—यह हम क्षत्रियों की बहुत पुरानी मर्यादा है अखिले। पर स्त्रियों की बात ही कुछ और है, स्त्रियों की ही मङ्गल कामना हमें जीवित रखती है और हम उन्हीं के नाम पर चाहे जब जूझ मरते हैं? हम वीर हैं, अखिले।

अखिला—और हम भी वीरांगना हैं, पुरुष के अखण्ड मङ्गल के लिए हम भी पीछे नहीं रहतीं।

पेरव—पर यह बड़ा ही कठिन कार्य है। कहने में सरल है, देखने में कठिन और करने में बहुत ही कठिन। बहुत ही कठिन।

अखिला—(तेजी से) तुम्हारा हृदय इतना अविश्वासी है ? छिः देव-मंदिर में अविश्वास ? सुना है, मुगल-सम्राट् दिल्ली से चित्तौड़ पर आक्रमण के लिए चल चुके हैं। परीक्षा निकट ही है, सावधान होकर जाओ।

(प्रस्थान)

पेरव—(चकित-भीत होकर) ओफ् ! कैसा तेज है, सचमुच वीरांगना है, इसी से तो मेरा ब्याह होगा ? भगवन्, मैं व्याह के लिए चित्तौड़ आया हूँ। पर क्या सचमुच युद्ध की आँधी निकट है ?—ओह ! यह सामने अति दूर, इसी तूफान के लक्षण दीख रहे हैं। कैसा भीषण भविष्य है ! वह आई ! वह आई ! वह आ रही है ! वह भीषण रव उठ रहा है—वह प्रलयंकारा आँधी सचमुच आ रही है। व्याह ! व्याह कहाँ है ? मङ्गल-कलश, तुरही, कहीं भी तो कुछ नहीं दीखता। दीखता है वही भीषण भविष्य। बस, वही भीषण भविष्य ! वह आई, वह आई।

(बड़बड़ाता हुआ जाता है)

———

दूसरा दृश्य

[स्थान—राजमहल का आँगन]

(समय—दोपहर)

(रानी का अस्थिर चित्त से प्रवेश)

रानी—(पुकारकर) अखिले, अखिले, अरे ! कहाँ गई बेटी ?

(इधर-उधर देखती है)

अखिला(बाहर से आकर) माता, क्या आज्ञा है ?

रानी—बेटी, कहाँ गई थी ?

अखिला—पूजा करने, माता के मन्दिर में।

रानी—बस। अब मानसी पूजा बन्द करो, वाचा-पूजा भी बन्द करो। अब कर्म की पूजा का समय आ गया है, सावधान !

अखिला—क्या और कुछ नया समाचार मिला है ?

रानी—सब नया ही है। अब की बार स्वयं सम्राट् अकबर आ चुके हैं।

अखिला—आ चुके हैं ? अच्छी बात है, अबकी बार वे स्वयं राजपूतानियों की शक्ति देख जायँ।

(जयमल का प्रवेश)

जयमल—(मुस्कराकर) तुम लोग यहाँ गपशप उड़ा रही हो ?

रानी—(गम्भीरता से) हमें आज्ञा दीजिए, प्राण रहते हम अपना कर्तव्य पालन करेंगी ।

जयमल—(हँसकर) अरे ! अभी से इतनी गम्भीरता ? प्रिये, चिंता किस बात की है ?

रानी—महाराणा के विचार आपको प्रकट ही हैं, उन्हीं का डर है।

जयमल—(मुस्कराकर) कुछ नहीं। महाराणा को कुछ भय नहीं है। उन्होंने कल रात दुर्ग त्याग दिया है। अब वे अर्वली की दुर्गम गोद में सुरक्षित हैं।

रानी—(आश्चर्य से) एँ! क्या सचमुच? महाराणा ने दुर्ग त्यागा? छि:! (ग्लानि से) अच्छी बात है, कोई चिन्ता नहीं। मेवाड़ महाराणा के ऊपर गर्व नहीं करता। जब महाराणा गर्भ में एक निर्जीव मांस-खण्ड थे, उससे बहुत प्रथम से मेवाड़ अपनी आन को निभाता चला आया है।

जयमल—प्रिये, शान्त हो। मैं अभी चित्तौड़ में ही हूँ। यह दुर्ग है, और वीर सीसोदिया हैं। चित्तौड़ की आन पर जूझने को यह वहुत है। पर क्या तुम लोगों को भय मालूम होता है?

रानी—(सतेज स्वर में) स्वामिन्, मैं और मेरी पुत्री भी क्षत्राणियाँ हैं (अखिला से) अखिले, क्या त डरती है?

अखिला—नहीं माँ, (बन्दूक के शब्द होने से चमककर) क्या आक्रमण हुआ?

जयमल— (जल्दी से) प्रतीत तो ऐसा ही होता है। (वहुत-सी बन्दूकों का एक साथ शब्द) लो आक्रमण हुआ, प्रिये, धैर्य रखना। कदाचित् मुझे आश्वासन देने को समय न मिले। पाँच सहस्र सीसोदिया महल की रक्षा को नियुक्त हैं और तुम्हीं उनकी अधिनायक हो। (तोपों का भीषण गर्जन) लो मैं चला, श्रीएकलिंग तुम्हारे रक्षक हैं।

(तेज़ी से प्रस्थान)

रानी—(क्षणिक उद्वेग से स्वामी की ओर दौड़ने की चेष्टा करती है। किन्तु फिर शान्त होकर—अखिला का हाथ पकड़ कर) बेटी, चलो हम भी अपना कार्य करें। देखना, क्षत्रिय हमारी जाति है और अग्नि हमारा पिता। वसुन्धरा हमारी माँ है, आन हमारा जीवन है, पवित्रता हमारा पुण्य! बलिदान हमारा कृत्य है, और दृढ़ता हमारा धर्म है। चलो चलें।

(तेजी से प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

[**स्थान**—शाही शिविर]

(अपने खेमे में बादशाह अकेला टहलता है)

बादशाह—(स्वगत) खैर देखा जायगा। दिल हटता है, मगर यह हमेशा का बुजदिल है। न मानूँगा—हरगिज़ न मानूँगा। इस्लाम और तख्त—इनके नाम पर ऐसे-ऐसे हज़ार दिल कुर्बान कर दिए जा सकते हैं। लोग यही कहेंगे कि अकबर—जो बहादुरों का क़द्रदान मशहूर है—बहादुरी का खून करने आया है। कहने दो—पर यह नहीं हो सकता कि ये नाचीज़, मग़रूर, काफ़िर सिर न झुकायें। बड़ी-से-बड़ी

वहादुरी को मेरे क़दम पर झुकना ही चाहिए। वरना तवारीख़ के तख़्ते पर मेरी शहंशाही अधूरी रहेगी? ये हिन्दू मुसलमान से नफ़रत करते हैं, उसकी छूत से डरते हैं—ख्वाह वह मुसलमान शहंशाह ही क्यों न हो! इन्हें फ़तह करूँगा। हक़? वेशक हक़ कुछ नहीं। हरएक को अपने घर आज़ाद रहने का हक़ जरूर है, लेकिन खुदा ने मुझे सवकी वादशाहत अता फ़र्माई है। आधा हिंदूपन मैंने फ़तह कर लिया है—मग़रूर जौहरदार हिंदू-राजपूतों की लड़कियाँ शाही वाँदियाँ वन गई हैं। जिन्हें हमेशा नफ़रत करते थे, वे दामाद वन गए हैं। अब सिर्फ एक हाथ मारने की देर है कि वेड़ा पार है। न हिंदू आज़ादी चाहते हैं—न खुदा इन्हें आजाद रखना चाहता है। अगर ये हिंदू लोग हमारी तरह आजादी के ख्वाहाँ होते, तो मेरी सल्तनत कव की धूल में मिल गई होती। यह शेर का वच्चा मानसिंह! यह नायव मुन्तजिम टोडरमल, वीरवल, इनमें से हरएक की ताक़त मेरी तमाम वादशाहत के वरावर है—मगर ये सव ईंजानिव के फ़र्मावरदार हैं। तव क्या चित्तौड़ में कुछ नई हवा वहती है? कुछ नहीं। यह आज़ादी की डींग है। आज़ाद शहंशाह रहेगा। चित्तौड़ को फ़तह करूँगा। मगर?...... (सोचता है) खैर, क्या मुज़ायका है। अकवर के दिमाग़ में घर की अक्ल चाहिए—काँटे-से-काँटा निकालूँगा। (सोचकर) देखा जायगा। (इधर-उधर टहलता है—कुछ देर वाद पुकार कर) कोई है?

चोवदार—जहांपनाह! गुलाम हाजिर है।

रानी—(क्षणिक उद्वेग से स्वामी की ओर दौड़ने की चेष्टा करती है। किन्तु फिर शान्त होकर—अखिला का हाथ पकड़ कर) बेटी, चलो हम भी अपना कार्य करें। देखना, क्षत्रिय हमारी जाति है और अग्नि हमारा पिता। वसुन्धरा हमारी माँ है, आन हमारा जीवन है, पवित्रता हमारा पुण्य! बलिदान हमारा कृत्य है, और दृढ़ता हमारा धर्म है। चलो चलें।

(तेज़ी से प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

[**स्थान**—शाही शिविर]

(अपने ख़ेमे में बादशाह अकेला टहलता है)

बादशाह—(स्वगत) ख़ैर देखा जायगा। दिल हटता है, मगर यह हमेशा का बुजदिल है। न मानूँगा-हरगिज़ न मानूँगा। इस्लाम और तख़्त—इनके नाम पर ऐसे-ऐसे हज़ार दिल कुर्बान कर दिए जा सकते हैं। लोग यही कहेंगे कि अकबर—जो बहादुरों का क़द्रदान मशहूर है—बहादुरी का खून करने आया है। कहने दो—पर यह नहीं हो सकता कि ये नाचीज, मग़रूर, काफ़िर सिर न झुकायें। बड़ी-से-बड़ी

वहादुरी को मेरे क़दम पर झुकना ही चाहिए। वरना तवारीख़ के तख्ते पर मेरी शहंशाही अधूरी रहेगी? ये हिन्दू मुसलमान से नफ़रत करते हैं, उसकी छूत से डरते हैं—ख्वाह वह मुसलमान शहंशाह ही क्यों न हो! इन्हें फ़तह करूँगा। हक़? बेशक हक़ कुछ नहीं। हरएक को अपने घर आज़ाद रहने का हक़ जरूर है, लेकिन खुदा ने मुझे सबकी वादशाहत अता फ़र्माई है। आधा हिंदूपन मैंने फ़तह कर लिया है—मगरूर जौहरदार हिंदू-राजपूतों की लड़कियाँ शाही बाँदियाँ वन गई हैं। जिन्हें हमेशा नफ़रत करते थे, वे दामाद वन गए हैं। अब सिर्फ एक हाथ मारने की देर है कि बेड़ा पार है। न हिंदू आज़ादी चाहते हैं—न खुदा इन्हें आजाद रखना चाहता है। अगर ये हिंदू लोग हमारी तरह आजादी के ख्वाहाँ होते, तो मेरी सल्तनत कव की धूल में मिल गई होती। यह शेर का वच्चा मानसिंह! यह नायव मुन्तजिम टोडरमल, वीरवल, इनमें से हरएक की ताक़त मेरी तमाम वादशाहत के वरावर है—मगर ये सव ईंजानिव के फ़र्मांवरदार हैं। तव क्या चित्तौड़ में कुछ नई हवा वहती है? कुछ नहीं। यह आज़ादी की डींग है। आज़ाद शहंशाह रहेगा। चित्तौड़ को फ़तह करूँगा। मगर?...... (सोचता है) खैर, क्या मुज़ायक़ा है। अकवर के दिमाग़ में घर की अक्ल चाहिए—काँटे-से-काँटा निकालूँगा। (सोचकर) देखा जायगा। (इधर-उधर टहलता है—कुछ देर वाद पुकार कर) कोई है?

चोवदार—जहाँपनाह! गुलाम हाजिर है।

वादशाह—राजा साहव और अमलों को बुला।
चोवदार—जो हुक्म।

(प्रस्थान)

(वीरवल, अव्दुलफ़ज़ल, अव्दुलक़ादिर, टोडरमल का प्रवेश)

(वादशाह तख्त पर वैठता है, सव सरदार यथास्थान वैठते हैं)

अकवर—(वीरवल से) राजा साहव, जैसा कि मैं कई वार कह चुका हूँ—मेरा मक़सद किसी की आजादी छीनने का नहीं है। न मुझे मज़हवी तअस्सुव ही है। वल्कि मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान एक मुत्तहदा ताक़त वन जाय और वह एक ही ऐसी ताक़त का ज़हूर पैदा कर ले कि जो वक्त जरूरत दुनिया के मुक़ाविले उसकी कहलाए।
अव्दुलफ़ज़ल—वेशक हुजूर की राय से मुझे इत्तिफ़ाक़ है! ये छोटी-छोटी आज़ाद ताक़तें क़ौमियत नहीं पैदा करने दे सकतीं और न मुल्क में अन्दरूनी अमल होने दे सकती हैं।
अव्दुलक़ादिर—और कुफ्र का ज़ोर भी नहीं घटेगा।
वीरवल—हुज़ूर की राय वहुत ही मुवारिक है। मगर आला-हज़रत उस जज़्वे पर भी ग़ौर करें जो ईश्वर ने हर एक आवरूवाले इन्सान को दिया है, और जिसके लिये ये राजपूत जान खोना अपना मज़हवी फ़र्ज समझते हैं।
वादशाह—वेशक मैं अपने निजू तौर से उनकी इज्ज़त करता हूँ। मगर जव शाहंशाही की जवावदारी पर ग़ौर

करता हूँ, तो मुझे मरजी के खिलाफ इस किस्म की छोटी-छोटी फतह करनी पड़ती हैं।

अब्दुलक़ादिर—जी हुजूर। और यह क़ुफ़ दूसरी तरह पर दुनिया से उठ भी नहीं सकता। खुदा की यही मर्जी है कि आलाहज़रत ही काफ़िरों को उठाकर उनकी जगह दीनदारों को दें।

बादशाह—अब्दुलकादिर साहब, मुझे खुदा की मर्जी कुछ-कुछ मालूम है। मगर सच मानिए, मुझे क़ुफ़ उठाने की उतनी फ़िक्र नहीं है। उसके लिए आप मौलाना लोग हैं। मैं तो हिन्दुस्तान की मुल्की जिन्दगी चाहता हूँ।

बीरबल—मगर खुदा बंद, राजपूतों का उसूल अजीब ही है—और इसमें शक नहीं कि वह बाक़ायदा रहे, तो बहुत ऊंचा है।

बादशाह—हाँ, और तब मेरे ही बयान की ताईद हो सकती है।

(दूत का प्रवेश)

दूत—(ज़मीन चूम कर) अब्दुलफ़ज़ल जलालुद्दीन शहंशाह की फ़तह हो।

बादशाह—(दूत से) कहो, क्या खबर है?

दूत—सिर्फ एक जवाब है खुदावंद,—सिर देंगे, आज़ादी नहीं। मर मिटेंगे, मगर आन न छोड़ेंगे। एक-एक बात का जवाब तलवार है। सिर्फ तलवार।

(सब चिंतित होते हैं, अब्दुलक़ादिर प्रसन्नता का नाट्य करता है—बादशाह सिर नीचा करके सोचता है)

बादशाह—(चैतन्य होकर) तो फिर मजबूरी है। एक ही बात है जङ्ग। अच्छा, सिपहसालार को हाजिर करो।

(सिपाही का प्रस्थान)

(सिपहसालार का प्रवेश)

सिपहसालार—(कोर्निस करके) खुदावंद, वंदा हाजिर है।

वादशाह—फ़ौज का क्या हाल है ?

सिपहसालार—हुजूर, सब तरह लैस है।

वादशाह—(उठते हुए) कल सुवह किले पर हमला होगा, राजा वीरवल तमाम फ़ौज की कमान लेंगे। समझे ? जाओ।

सिपहसालार—जो हुक्म वंदानिवाज़।

(प्रस्थान)

वीरबल—(हाथ जोड़कर) हुजूर !

वादशाह—(वात काटकर) राजा साहव, अपने दोस्त अकवर के लिए यह तकलीफ़ गवारा करें। उम्मीद है, जैसा भरोसा है, वैसा ही काम भी होगा। अव आराम कीजिए, काम वहुत है।

(प्रस्थान—वीरवल सिर नीचा किए थोड़ी देर खड़े रहते हैं, फिर धीरे-धीरे पछताते हुए जाते हैं)

चौथा दृश्य

[स्थान—चित्तौड़ के दुर्ग का प्रांत-भाग]

(समय—मध्याह्न)

जयमल—(स्वगत) आज छः सप्ताह हो गए। वादशाह अकवर ने किले को सव ओर से घेर रक्खा है। वादशाह का

साहस अद्वितीय है, और सेना असंख्य है। वह सब तरह से सुसज्जित और शिक्षित है। छः सप्ताह के घनघोर युद्ध ने कुछ अच्छा फल नहीं दिखाया, उलटी क्षीणता बढ़ गई है। अब मेरे पास केवल नौ हजार योद्धा रह गए हैं—केवल नौ हजार। (चिंतित होकर टहलता है) केवल नौ हजार। (ठहरकर) पर वे सब सिंह हैं, राजपूतनी के बच्चे हैं। आज छः सप्ताह से बादशाह के आक्रमण हो रहे हैं, पर जैसे पत्थर की चट्टान से टकराकर पानी की लहरें लौट जाती हैं, वैसे ही बादशाही सेना लौटती रही है। इसके सिवा यह दुर्ग (चारों ओर देखकर) यह दृढ़ दुर्जय दुर्ग हमारी रक्षा कर रहा है। सौभाग्य से इन आक्रमणों में हमारी हानि भी कम हुई है। पर कब तक? हमारे पास केवल नौ हजार योद्धा बचे हैं। बादशाह की असंख्य सेना के सामने ये समुद्र में बूँद के समान हैं। बूंद भी नहीं। फिर नई-नई सेना चली आ रही है। केवल नौ हजार सिपाही! और यह दुर्ग!!

(चिंता से टहलता है)

(रानी का प्रवेश)

रानी—स्वामिन्, क्या यवन विजयी होंगे?

जयमल—कह नहीं सकता, उनका स्वामी अत्यन्त वीर है।

रानी—क्या दुर्ग में उसकी जोड़ का एक भी वीर नहीं?

जयमल—प्रिये, मेरा अभिप्राय दुर्ग के वीरों को अपमानित करने का नहीं है। किन्तु अकबर वीर भी है और बुद्धिमान भी।

रानी—(विचारकर) क्या इससे प्रथम हमने ऐसी घटनाओं का सामना नहीं किया ?

जयमल—अवश्य, पर परिणाम सब घटनाओं का एक-सा नहीं होता।

रानी—तो क्या आपको आशा है कि म्लेच्छ जीतेंगे ?

जयमल—सुनो, राजपूत कभी हताश नहीं होते। और मैं वीरता से अंत तक उसका सामना करने को तैयार हूँ।

रानी—स्वामिन्, अकबर को मालूम नहीं है कि दुर्ग में स्त्रियाँ भी प्रस्तुत हैं। उन वीरांगना, वीर-माता और वीर-पुत्रियों का सामना सहज नहीं है। क्या वीरांगनाओं के तेज का उसे ज्ञान नहीं है ?

जयमल—(हँसकर) प्रिये, अपने कटाक्ष से मुझे विजय करके यवन-राज पर भी विजय का हौसला रखती हो ?

रानी—महाराज, यह हास्य का अवसर नहीं है। मैं आपको एक साधारण प्रजा की हैसियत से यह प्रमाण देना चाहती हूँ कि देश-रक्षा में एक स्त्री भी समर्थ हो सकती है।

जयमल—(रानी की ओर देखकर) तो तुम क्या चाहती हो ?

रानी—शत्रु के डेरे पर जाने के लिए आपकी अनुमति।

जयमल—(चकित होकर) शत्रु के डेरे पर ! इसका क्या मतलब ?

रानी—मतलब यह कि मैं यह देखूँगी कि स्त्री की खड्ग की धार कैसी तेज है।

जयमल—प्यारी, यद्यपि देश पर न्योछावर होने के लिए इससे भी अधिक आत्म-त्याग और साहस की आवश्यकता है, पर तुम्हारा साहस शक्ति के बाहर का है ! शत्रु के

डेरे पर ? ना-ना-ना, तुम भीतर जाओ, अभी मुझे बहुत काम है।

रानी—नाथ, क्या आपको मेरे मनोबल पर विश्वास नहीं है ?

‥यमल – ईश्वर न करे कि मैं कभी ऐसा पाप करूँ।

रानी—तो क्या आपको मेरे बाहु-बल पर अविश्वास है ?

जयमल—कदापि नहीं, तुम मेरी सहधर्मिणी हो।

रानी—(तैश में आकर) तो देव, मुझे यवन-शिविर में जाने दीजिए। मैं अकेली मेवाड़ का उद्धार करूँगी।

जयमल—(कुछ सोचकर) तो जाओ, यदि तुम्हारे ही भाग्य में मेवाड़ की भाग्य-लक्ष्मी होना बदा है, तो जाओ, शत्रु का नाश करो। भगवान् तुम्हारे रक्षक हों। (दीर्घ निःश्वास फेंकता है)

रानी—(कुछ देर खड़ी रहकर विकलता से) स्वामिन्, मेरी बच्चियाँ तुम्हारे सुपुर्द हैं। (आँसू भर आते हैं। उन्हें हठात् रोककर) वे अपने कठोर व्रत से न डिगने पावें।

(दर्प से प्रस्थान)

जयमल—अहा ! यह हाड़ा-वंश की राजपूतनी और मेरी स्त्री है। यह तेज, यह त्याग, यह पौरुष, मेरी ही स्त्री को शोभा देता है। यह चित्तौड़, यह दुर्ग, यह पर्वत-वन, सब इसी के हैं। अच्छा देखूँ, क्या होता है (दूर तक झाँककर) गई ?—गई। अच्छा, श्रीएकलिंग तेरे साथ हैं।

(प्रस्थान)

———

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—दक्खिनी भाग का मोर्चा]

(समय—मध्याह्न)

(घनघोर युद्ध : दुर्ग की दीवारों पर जयमल वीरों को उत्साह देते फिर रहे हैं)

जयमल—शाबाश! मेरे वीरो, तुमने सचमुच क्षत्राणियों का दूध पिया है। तुम्हारा यह पराक्रम इन अरवली की चट्टानों पर अमर रहेगा। यवन-राज छः सप्ताह से अपना समस्त बल लेकर उमड़ रहे हैं; किन्तु तुम्हारी वीरता का लोहा मान गए हैं। ये सिंह और सिंहों के बच्चे यों ही अपने दाँत उखाड़ने नहीं देंगे। झख मारकर बादशाह ने वीरता को त्याग सुरङ्ग बनाकर दुर्ग उड़ाने का संकल्प किया है। किन्तु सावधान! यह सुरङ्ग न बनने पावे। मारे जाओ, मारे जाओ। वह देखो, मजूर लोग सिर पर ढाल रखकर दम्मामे पर मिट्टी डाल रहे हैं। पर वाहरे उस्ताद इस्माईल! तुम्हारी और तुम्हारे शिष्यों की गोली इनकी मौत का वारंट है। जो आया, लौटकर नहीं गया। वाह वा! कैसा मेंह बरस रहा है। मारे जाओ प्यारो। (दूसरी ओर फिर कर) पेरबसिंह, तुमने वीरता की हद कर दी। यह सामने मुर्दों का ढेर तुम्हारे बाणों की करतूत का पता दे रहा है। मारे जाओ वीरो! यह पर्व फिर न आवेगा। चित्तौड़ की ये दुर्गम पहाड़ियाँ तुम्हारी वीर-विरुदावली को वायु में गुँजाकर तुम्हारी सन्तानों को सुनायेंगी। मारे जाओ, मारे जाओ। मारने के लिए इतने शत्रु कभी नहीं मिलेंगे।

सब योद्धा—महाराज की जय ! मेवाड़ की जय !! श्रीएकलिंग की जय !!!

(एकाएक भीषण कड़कड़ाहट)

(पश्चिम की दीवार सुरङ्ग से उड़ जाती है। धूल की गुन्ज उड़ती है। सब घबराकर चिल्लाते हैं)

जयमल—(शांति से) कोई चिन्ता नहीं। अब हमारी छातियों की दीवारें ······(एकाएक गोली सिर में लगने से जयमल गिर जाते हैं। चारों ओर हाहाकार)

जयमल—(कुछ देर में होश में आकर तेज स्वर से) कोई चिंता नहीं, मारे जाओ—कठिन मार मारो। शत्रु यह न समझे कि चित्तौड़ का वल एक व्यक्ति पर है। सावधान ! दम्मामा वनने न पावे। इस्माईल, क्या तुम्हारी वन्दूक वन्द हो गई ? मुझे शब्द नहीं सुन पड़ता। पेरव, पेरव, क्या तुम्हारा जयोल्लास ठंडा पड़ गया ? कुछ सुनाई नहीं देता। ऐं ! क्या आँधी आई ? फतहसिंह, फतहसिंह ! ओफ ! (फतहसिंह दौड़कर आते हैं) फतहसिंह ! लो मेरा अन्त······। तुम्हें दुर्ग सुपुर्द।··· सावधान······चित्तौड़ की नाक······(स्वर क्षीण हो जाता है। सब रोते हैं। मुँह पर पानी छिड़कते हैं। पुनः चैतन्य) छिः ! युद्ध के समय स्त्री-रोदन······फ—त—ह······

(मृत्यु)

———

छटा दृश्य

[स्थान—मार्ग]

(समय—अपराह्न)

(गायकी के वेश में रानी का प्रवेश)

गायन विहाग

अब मोरी विगरी कौन वनाए ।
चहुँ दिशि ते विकराल काल-सम,
अंधर वादर छाए । अब०
भभक भयङ्कर भँवर उठत है,
पग-पग चहत डुबाये । अब०
खेवट खे निर्बल भए सिगरे,
रिपु पतवार हताए । अब०
आशा-शशि की अपट ज्योति लघु,
घन घिरि चहत छिपाये । अब०
अब एक डोर तुमहिं सों लागी,
नैया पार लगाए । अब मोरी०

रानी—(घूमकर) बस अब मुझे कोई नहीं पहचानेगा । राज-प्रतिष्ठा राज-महल में रह गई । अब मैं रानी नहीं, गायकी हूँ । मेरा उद्देश्य शत्रु को रिझाना है । छिः ! चित्तौड़ की रानी आज नीच-वृत्ति में तत्पर है । नहीं-नहीं जिस आन पर राजपूतनी अपने प्राणाधार स्वामी को केसरिया वाना पहनाकर विसर्जन कर देती है, जिस आन पर छाती के स्नेह और दूध से पाले हुए प्राणोपम पुत्र को लोहे की कठिन मार में फेंककर राख कर देती

है, उसी आन पर आज चित्तौड़ की रानी ने अपने पद-गौरव को विसर्जन किया है। अब वह रानी नहीं, गायकी है। जो गायन मैंने अपने पति को मुग्ध करने के लिए परिश्रम से सीखा था, उसी से आज यवन-सम्राट् को मोहूँगी। हाँ अवश्य मोहूँगी। पर उसमें इतना अन्तर रहेगा कि पति का मन चाहती थी, और शत्रु का प्राण चाहती हूँ (आकाश की ओर देखकर) स्वामिन्, दुखी न होना, तुम्हें मेरी प्रतीक्षा करनी होगी। मुझे अभी काम है। शीघ्र नहीं आ सकती। (कुछ देर चुप रहकर) तो चलूँ, सामने ही तो यवन-शिविर है।

———

सातवाँ दृश्य

[**स्थान**—राजमहल का एक कमरा]

(**समय**—सन्ध्या-काल)

(अखिला अकेली खड़ी सोचती है)

अखिला—(स्वगत) छिः! कैसी लज्जा की बात है। भैरवसिंह जब देखो तब तृषित नेत्रों से मुझे देखा करता है। उस दिन मैंने उससे इसका कारण पूछा—तो कहा—तुम सुन्दर हो। पर सुन्दर वस्तु को देखे ही चाहिए? समय हो चाहे न हो, अवसर-

सुन्दर वस्तु को देखे ही जाना चाहिए। छिः ! ये पुष्पों से लदे हुए पौदे, ये रंग-विरंगे पक्षी, ये बहुमूल्य पदार्थ, क्या कुछ कम सुन्दर हैं ? पर मैंने कब से उन्हें आँख उठाकर भी नहीं देखा। यह पेरवसिंह भी स्वयं कितना सुन्दर है, पर इन्हें भी मैं कितना देखती हूँ। देश पर शत्रु चढ़ आया है, दैव कुपित हुआ है, दुर्ग पर आक्रमण हो रहे हैं, पिता जूझ मरे, नगर में हाहाकार मच रहा है। यह समय क्या सौन्दर्य-निरीक्षण का है ? वह देखो, पेरवसिंह आ रहा है। अच्छा, मैं उससे पूछूँ तो सही; वह मुझे क्यों देखता है ?

(पेरवसिंह का प्रवेश)

पेरवसिंह—अखिले, तुम यहाँ अकेली खड़ी हो ? यह अनुचित है। शत्रु दुर्ग पर दृष्टि दिए हैं। स्थान-स्थान पर दुर्ग का कोट भग्न हो गया है। तुम्हें इस तरह अरक्षित घूमना उचित नहीं है।

अखिला—मैं भीतर जाती हूँ। पर तुमसे यह पूछती हूँ कि तुम मुझे इतना क्यों देखा करते हो ?

पेरवसिंह—कितनी वार यह प्रश्न करोगी ? इस रूप-सुधा को पीते-पीते प्यास नहीं बुझती। पर क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगता ?

अखिला—नहीं। क्या तुम्हें समय-कुसमय का ध्यान नहीं है ? वह देखो, दुर्ग के सामने मीलों तक यवनों का शिविर पड़ा है। वह देखो, शत्रु अल्लाहो-अकबर का नाद कर रहे हैं। और वह देखो, हरी-हरी खेती, जो हर-साल सुनहरे नाज का ढेर लगाती थी, इनके घोड़ों से

कुचल गई है। और देखो, दूर पर कितने गाँव धधक रहे हैं। गाँव वाले निस्सहाय अनाथ की तरह कलपते फिर रहे हैं। और ये नगर-निवासी भयभीत चिंतित होकर क्षण-क्षण पर विपत्ति की बाट जोह रहे हैं। छोटी बालिकाएँ तोपों की भीषण गर्जना से भयभीत होकर अपनी माताओं के धड़कते कलेजे से चिपटी पड़ी हैं। ये सब अपने राजा की सहायता की आशा में टकटकी लगाए बैठे हैं; पर राजा ने पहले ही आत्मबलि दे दी है। अब उसके वीरों का खून बह रहा है। इन दृश्यों की अपेक्षा: क्या मेरा मुख कुछ अधिक चित्ताकर्षक और सुन्दर है ?

पेरवसिंह—है। सुन्दरी, है। इस मुख को देखकर इन दृश्यों को देखने का साहस ही नहीं बढ़ जाता, प्रत्युत सामना करने की शक्ति सौगुनी हो जाती है।

अखिला—अगर ऐसा है, तो तुम इतने दिन से मुझे देख रहे हो। बताओ, कितनी शक्ति बढ़ गई है ? और तुमने उसका क्या उपयोग किया है ?

पेरवसिंह—मैं उस उपयोग की परीक्षा करने को प्रस्तुत हूँ। पर एक बात तुमसे पूछना हूँ।

अखिला—वह क्या ?

पेरवसिंह—क्या तुम मुझे प्यार करती हो ?

अखिला—मैं नहीं कह सकती। अच्छा इससे तुम्हारा मतलब क्या है ?

पेरवसिंह—मतलब यही है कि जीवन का तत्व युवावस्था है, किन्तु जिस प्रकार यह सुन्दर है, उसी प्रकार अस्थिर भी। इसलिए इसे व्यर्थ खोना मूर्खता है।

मैं तुम्हारे प्रेम में अत्यन्त आनन्दित हूँ । मैं चाहता हूँ कि अब विवाह में विलम्ब न होना चाहिए।

अखिला—(विरक्ति से) ऐसे विप्लव के समय विवाह का प्रसङ्ग छेड़ने में तुम्हें ग्लानि नहीं होती? पिता ने जब वाग्दान दे ही दिया है, तब जब समय आवेगा, विवाह, हो ही जायगा। इसके सिवा मैं राजपूतानी हूँ, धर्म से मैं वीर राजपूत की स्त्री बनना चाहती हूँ। मैं नहीं चाहती कि प्रेम हमारे विवाह में हस्तक्षेप करे। राजपूतों का व्याह प्रेम के लिए नहीं होता, पेरवसिंह!

पेरवसिंह—सच है। पर क्या मैं वीर नहीं हूँ?

अखिला—मैं नहीं जानती। तुम वीरता में प्रसिद्ध अवश्य हो, परन्तु मैंने उसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं देखा। प्रत्युत इसके विपरीत देखा है।

पेरवसिंह—विपरीत देखा है?

अखिला—हाँ, क्या युद्ध के समय प्रेम और विवाह की बात छेड़ना वीरता है? शत्रु के आक्रमण और घेरे के समय स्त्री-मुख को देखते रहना क्या वीरता है?

पेरवसिंह—हाय! तुम बड़ी निष्ठुर हो। तुम सौंदर्य और प्रेम-तत्व को बिलकुल नहीं समझतीं।

अखिला—सम्भव है। हाँ, बिल्कुल ही नहीं। राजपूतनियों को इसकी शिक्षा नहीं मिलती, न अवसर ही मिलता है। राजपूतनी अपने सौभाग्य-वस्त्र को केसरिया रङ्गकर पहनती हैं। तुम यह सिद्ध कर दो कि तुम्हारी प्रशंसा झूठी नहीं है, और मेरे आक्षेप झूठे हैं।

पेरवसिंह—मैं प्रस्तुत हूँ। पर तुम्हारा नियम बड़ा कठोर है।

अखिला—वीर पुरुष, जिन्हें अपनी वीरता का अभिमान होता है, ऐसे नियम से नहीं घबराते।

पेरवसिंह—परन्तु मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जिस समय हमारी विवाह-रीति पूर्ण हो जायगी, मैं स्पष्ट दिखा दूँगा कि तुम्हारे पति में राजपूत के सब गुण मौजूद हैं।

अखिला—उन गुणों को देखकर मैं तुम्हें वरूँगी। जीवित रही, तो इसी दुर्ग में—इसी पृथ्वी पर; नहीं तो फिर आनन्दलोक में। आओ, परीक्षा दो। कोलाहल बढ़ रहा है।

(तेज़ी से प्रस्थान)

पेरवसिंह—(कुछ देर हक्का-बक्का खड़े रहकर) धिक्कार! धिक्कार! धिक्कार! इस कामुकता पर। ये भुजदण्ड, यह तलवार। छिः-छिः!

(तलवार म्यान से निकालकर युद्धक्षेत्र की तरफ दौड़ता है)

———

आठवाँ दृश्य

[स्थान—यवन-शिविर]

(समय—रात्रि)

(बादशाह अपने खीमे में अकेला बैठा है)

अकबर—(स्वगत) छः हफ्ता हो गये, मगर फ़तह हाथ नहीं आती। यह छोटी-सी रियासत फ़तह करने की शान

मेरी तमाम बादशाहत की शान से ऊँची रहेगी। मगर वाह री बहादुरी, शाबाश! ये शेर-सिपाही अगर मुझे मिल जायँ, तो मैं तमाम दुनिया को फतह कर सकता हूँ। इन मुट्ठी-भर बहादुरों की बहादुरी तस्वीर की मानिंद देखने की चीज है।

(सोचता हुआ टहलता है)

(चोबदार का प्रवेश)

चोबदार—(ज़मीन चूमकर) खुदावन्द ?

बादशाह—(झुँझलाकर) क्या है ?

चोबदार—जहाँपनाह, एक निहायत हसीन औरत कदम-बोसी चाहती है।

अकबर—हसीन औरत! (ताज्जुब से) किस लिए ? कौन है वह ?

चोबदार—एक गानेवाली है। हुजूर को खुश करके इनाम चाहती है।

बादशाह—(सोचकर) गानेवाली ? इस लड़ाई के मैदान में गानेवाली! (स्वगत) इसके क्या मानी ? (ठहरकर) अजीब है। कुछ दाल में काला है। गानेवाली (प्रकट) क्या वह हिंदू है ? और वह अपने को किस मुल्क की बताती है ?

चोबदार—आला हजरत! हिन्दू ही है। वह अपने को गुजरात की एक मशहूर गाने वाली बताती है। मगर गुलाम को गुजरातन नहीं जँचती। सिर्फ बे-मिसाल हसीन होने की वजह से ही अर्ज की गई है। जो इर्शाद!

अकबर—कुछ (ठहरकर) पहरे पर कौन है ?

चोबदार—यही गुलाम अपने ५० सिपाहियों के साथ है।

अकबर—यहां तक उसे किस तरह आने दिया ?

चोबदार—एक सिपाही उसे पहुँचा गया है।

अकबर—(क्रोध से) सिपाही ? उसका नाम लिख लेना। अच्छा औरत को भेज दो। मगर ख़बरदार रहना।

चोबदार—जो हुक्म।

(प्रस्थान और गायकी का प्रवेश)

अकबर—(देखकर) यही गायकी है ? जलालवाला चेहरा, ये हुकूमत की आँखें, यह पुश्तहापुश्त के घमण्ड की चाल। ओह ! कुछ दाल में काला है। (प्रकट) नाज़नी ! तुम क्या चाहती हो ?

रानी—मैं गायकी हूँ। सुना है, श्रीमान् को जो अपने कर्तव्य से प्रसन्न कर लेता है, उसको बहुत कुछ पारितोषिक मिलता है। मुझे वीन बजाने का बहुत अभ्यास है। मैंने सोचा, शायद श्रीमान् को मेरा वीन अच्छा लगे।

बादशाह—वीन बड़ा अच्छा बाजा है। अगर तुम्हारा बजाना भी तुम्हारे रूप के ही समान अद्वितीय होगा, तो मैं बेशक खुश होऊँगा। पास आ जाओ, और कोई गत बजाओ।

(रानी आगे बढ़ और दाहिनी ओर बैठकर वीन बजाती है। बादशाह संदेह की दृष्टि से देखते हैं)

रानी—(वीन बजाकर) श्रीमान् को कदाचित् अच्छा नहीं लगा।

बादशाह—वाह-वाह ! क्या कहना है। सचमुच तुम इस फ़न में बे-मिसाल हो। अच्छा कुछ मुँह से भी सुनाओ। आज तक मैंने ऐसा वीन नहीं सुना। उम्मीद है, गाना भी ऐसा ही होगा।

रानी—(और पास खिसककर) जो आज्ञा।

(गाती है)

गायन—राग देश

मना रे ! चल अपट अँधेरे देश।
सहस-सहस द्युतिमत् उड्गन-सँग, जहँ राजत राकेश।
मना रे०।
निठुर दिन करो दिन कर के मिस, पजरि पजारे लोल।
जगत प्रकाशन के मिस नासे अमित खदोतन जोत॥
मना रे०।

(बादशाह मस्त होकर झूमता है। अवसर पा रानी एकाएक बिजली की तरह कटार ले बादशाह पर टूट पड़ती है। बादशाह हाथ पकड़ लेता है। सिपाही दौड़े आते हैं)

नवाँ दृश्य

[**स्थान**—शाही शिविर]

(**समय**—मध्यान्ह)

(बादशाह अपने दरबारियों-सहित बैठा है)

बादशाह—(आश्चर्य के साथ बीरबल से) क्या यह सच है ?

बीरबल—जहाँपनाह ने जो सुना, सब सच है।

वादशाह—ताज्जुव ! मुझे तो क़यास भी नहीं था कि महज दिल वहलाने के तौर पर जो गोली छोड़ी गई थी, वह जयमल का शिकार करेगी।

वीरवल—ऐसा ही हुआ हुज़ूर ! तो क्या जहाँपनाह को यह ख़याल न था कि यह जयमल है।

वादशाह—मुतलक़ नहीं। दम्मामे पर, जो क़िले तक सुरङ्ग खोदने की सुहूलियत के लिए वनाया था, क़िले से गोले और तीर वरस रहे थे, रिपोर्ट हुई कि कोई मज़दूर राजी नहीं होता, इसलिए एक टोकरी मिट्टी डालने की मजदूरी एक अशर्फ़ी कर दी थी। लेकिन क़िले से दम्मामे पर ऐसी वेढव मार पड़ रही थी कि उसकी वजह से इतने में भी मज़दूर न मिलता था, क्योंकि यह उसकी जान की क़ीमत थी। तमाम दम्मामे की छत मजदूरों की लाशों से पट गई थी। इस रिपोर्ट को सुनकर मुझे इस वाक़ए को देखने का शौक़ हुआ। वहाँ जो वहादुरी का जौहर नजर आया, वह कभी न देखा था। मन में एक लहर आई और अपनी वन्दूक़ उठाकर भीड़ में जो सिर सबसे ऊँचा था, उस पर शिश्त वाँधकर फ़ैर कर दी। पीछे सुना कि जयमल ही उस गोली के शिकार हुए।

अब्दुलक़ादिर—(ख़ुश होकर) यह फ़तह का सुगन हुआ। हुज़ूर की गोली वा-इज्जत सर हुई।

वादशाह—मगर एक हादसा और हुआ। कल जयमल की रानी अपने शौहर का वदला लेने आई थी।

सव—(आश्चर्य से) आई थी ? क्या शाही कैम्प में ?

वादशाह—ख़ास मेरे डेरे में। और वार कर चुकी थी, मगर

मुझे शुरू से शक था। ज्यों ही उसने छुरा निकाला और झपटी कि मैंने हाथ पकड़ लिया।

अब्दुलक़ादिर—अस्तख़फ़रुल्ला ! तो हुजूर ने उसे हाथी के पाँव-तले रौंदवा नहीं डाला।

बादशाह—नहीं, मैंने उसे बा-इज्जत किले में वापस पहुँचा दिया। मैं औरतों से लड़ने यहाँ नहीं आया हूँ, मौलाना साहब।

बीरबल—हुजूर ने बड़ी ही अजीमुश्शान दिलेरी का सुबूत दिया।

बादशाह—खैर, तो क़िला अब फ़तहसिंह के हाथों में है ?

बीरबल—ज़ी हूजूर।

(चोबदार का प्रवेश)

चोबदार—हुजूर फ़ौजदार हाजिर है।

(फ़ौजदार का प्रवेश)

बादशाह—खाँ साहेब, इतना परेशान क्यों हो ? फ़तह तो तुम्हें मिल ही गई।

फ़ौजदार—(ज़मीन चूमकर) आला हजरत, जो आज देखा, कभी न देखा था। ओफ़ ग़जब ! फ़तह ने ही फ़तह को तहस-नहस कर दिया है। फ़तहसिंह पर बहादुरी खतम है।

बादशाह—(गम्भीरता से) मुफ़स्सिल बयान करो।

फ़ौजदार—जहाँपनाह, राजा के मरने पर, जैसा कि ख्याल था, हमारे ख़िलाफ खौफ़नाक जोश किले में फैला। जो दीवारें सुरङ्ग से उड़ाई गई थीं, रातों-रात तैयार हो गईं। फ़तहसिंह, जिसके हाथों में क़िले की कमान है, १७ साल का लड़का है। खुदा-खुदा करके दमामा

तयार किया और उसमें बारूद भी बिछा दी गई, मगर एक फ़ीश गलती भी हो गई। तजवीज़ यह थी कि दोनों सुरंगें एक साथ उड़ा दी जायँ और दस हजार फ़ौज लैस खड़ी रहे। सुरङ्ग उड़ते ही क़िले में घुसकर दख़ल कर लें। मगर न-मालूम किसकी ग़लती से सुरङ्ग उड़ाने में ३ मिनट का फ़र्क़ पड़ गया। पहली सुरङ्ग ज्योंहीं उड़ाई गई, फ़ौज बढ़ी। वह दीवार के पास पहुँची ही थी, तभी उनके नीचे की धरती उड़ गई, ग़रीब सिपाहियों की धज्जियाँ उड़ गईं!

बादशाह—(गुस्से से होठ चबाकर) फिर, फिर?

फ़ौजदार—(घुटनों के बल बैठकर) बंदानेवाज, इसके बाद दूसरा दस्ता दोनों तरफ़ से छूटा। मरम्मत दीवार नामुकम्मिल थी। उस पर से गर्म तेल के कड़हाव उलटे जा रहे थे। अगरचे यह मार गोलियों और तीरों से कम ख़ौफ़नाक न थी, मगर सिपाही बढ़े जा रहे थे। ख़याल था कि क़िले में पहुँचते ही दुश्मन पामाल हो जायँगे। मगर देखा, वहाँ छातियों की तेहरी दीवार खड़ी है।

सब लोग—(आश्चर्य से एक साथ) छातियों की दीवार?

फ़ौजदार—जी हाँ, छातियों की दीवार! लोहे और पत्थर से कहीं ज्यादा मजबूत थी। इसमें न सुरङ्ग ने काम दिया, न गोली ने। और तीर-बर्छा सब बेकार थे। दीवार न टूटी!

बादशाह—(जोश में) न टूटी? किसी तरह नहीं टूटी? फिर?

फ़ौजदार—फिर ख़ुदावंद, पहले १५० मस्त हाथी छोड़े गए। उसके बाद २०० और छोड़े गए। मगर वे मुट्ठी-भर

मुझे शुरू से शक था। ज्यों ही उसने छुरा निकाला और झपटी कि मैंने हाथ पकड़ लिया।

अब्दुलक़ादिर—अस्तख़फ़िरुल्ला! तो हुज़ूर ने उसे हाथी के पाँव-तले रौंदवा नहीं डाला।

बादशाह—नहीं, मैंने उसे बा-इज़्ज़त क़िले में वापस पहुँचा दिया। मैं औरतों से लड़ने यहाँ नहीं आया हूँ, मौलाना साहब।

बीरबल—हुज़ूर ने बड़ी ही अज़ीमुश्शान दिलेरी का सुबूत दिया।

बादशाह—ख़ैर, तो क़िला अब फ़तहसिंह के हाथों में है?

बीरबल—जी हुज़ूर।

(चोबदार का प्रवेश)

चोबदार—हुज़ूर फ़ौजदार हाज़िर है।

(फ़ौजदार का प्रवेश)

बादशाह—ख़ाँ साहेब, इतना परेशान क्यों हो? फ़तह तो तुम्हें मिल ही गई।

फ़ौजदार—(ज़मीन चूमकर) आला हज़रत, जो आज देखा, कभी न देखा था। ओफ़ ग़ज़ब! फ़तह ने ही फ़तह को तहस-नहस कर दिया है। फ़तहसिंह पर बहादुरी ख़त्म है।

बादशाह—(गम्भीरता से) मुफ़स्सिल बयान करो।

फ़ौजदार—जहाँपनाह, राजा के मरने पर, जैसा कि ख़याल था, हमारे ख़िलाफ़ ख़ौफ़नाक जोश क़िले में फैला। जो दीवारें सुरङ्ग से उड़ाई गई थीं, रातों-रात तैयार हो गईं। फ़तहसिंह, जिसके हाथों में क़िले की कमान है, १७ साल का लड़का है। ख़ुदा-ख़ुदा करके इत्मीनान

तयार किया और उसमें बारूद भी बिछा दी गई, मगर एक फ़ोश गलती भी हो गई। तजवीज़ यह थी कि दोनों सुरंगें एक साथ उड़ा दी जायँ और दस हजार फ़ौज लैस खड़ी रहे। सुरङ्ग उड़ते ही क़िले में घुसकर दख़ल कर लें। मगर न-मालूम किसकी ग़लती से सुरङ्ग उड़ाने में ३ मिनट का फ़र्क़ पड़ गया। पहली सुरङ्ग ज्योंहीं उड़ाई गई, फ़ौज बढ़ी। वह दीवार के पास पहुँची ही थी, तभी उनके नीचे की धरती उड़ गई, ग़रीब सिपाहियों की धज्जियाँ उड़ गईं!

बादशाह—(गुस्से से होठ चबाकर) फिर, फिर?

फ़ौजदार—(घुटनों के बल बैठकर) बंदानेवाज, इसके बाद दूसरा दस्ता दोनों तरफ़ से छूटा। मरम्मत दीवार नामुकम्मिल थी। उस पर से गर्म तेल के कड़हाव उलटे जा रहे थे। अगरचे यह मार गोलियों और तीरों से कम ख़ौफ़नाक न थी, मगर सिपाही बढ़े जा रहे थे। ख़याल था कि क़िले में पहुँचते ही दुश्मन पामाल हो जायँगे। मगर देखा, वहाँ छातियों की तेहरी दीवार खड़ी है।

सब लोग—(आश्चर्य से एक साथ) छातियों की दीवार?

फ़ौजदार—जी हाँ, छातियों की दीवार! लोहे और पत्थर से कहीं ज्यादा मजबूत थी। इसमें न सुरङ्ग ने काम दिया, न गोली ने। और तीर-बर्छा सब बेकार थे। दीवार न टूटी!

बादशाह—(जोश में) न टूटी? किसी तरह नहीं टूटी? फिर?

फ़ौजदार—फिर ख़ुदावंद, पहले १५० मस्त हाथी छोड़े गए। उसके बाद २०० और छोड़े गए। मगर वे मुट्ठी-भर

काफ़िर इन काली बलाओं से भी इन्सान ही की तरह लड़ने लगे। सैंकड़ों मस्त हाथी बे-सूँड के तड़फते फिर रहे हैं। लोहू का दरिया क़िले में बह रहा है, सैंकड़ों दोस्त दुश्मन-कुचले गए हैं। जो कुछ हो रहा है, सब अजीब है।

(बादशाह भौंचका-सा देखता रह जाता है)

फ़ौजदार—(झुककर अदब से) और हज़रत, वह फ़तहसिंह। वाह ! क्या कहना है ? वह तलवार लिए खड़ा था। एक मस्त हाथी उसकी ओर बढ़ा। उसने उसकी सूँड पर वार किया। पर हाथी ने झपटकर उसे सूँड में लपेट लिया। उसने ललकारकर एक सिपाही को उसकी सूँड काटने का हुक्म दिया। उसने वह हाथ मारा कि सूँड कटकर गिर पड़ी, और हाथी चिंघाड़ता हुआ भाग गया।

अब्दुलक़ादिर—तोबा-तोबा !

फ़ौजदार—उसके बाद एक और हाथी ने उसे धर दबाया। आखिर एक हाथी के दाँत से टकराकर उसकी तलवार टूट गई और उसी ने उसे कुचलकर बेदम कर दिया।

(बाहर शोर-गुल, रानी गिरफ्तार, रानी गिरफ्तार)

(बादशाह खड़ा होकर देखता है, कुछ सिपाही पास आकर)

सिपाही—(ज़मीन तक झुककर) हुज़ूर की फ़तह। चित्तौड़ की रानी गिरफ्तार हुई।

बादशाह—(बीरबल से) राजा साहब, महारानी को बा-इज़्ज़त डेरे में ठहरावें। पहरे का खास इन्तजाम रहे।

बीरबल—जो हुक्म।

(प्रस्थान)

बादशाह—(सिपहसालार से) रानी कहाँ गिरफ्तार हुई ?

सिपाही—हुजूर, वे घोड़े पर चढ़कर पीले कपड़े पहने फाटक खोल किले से निकल पड़ीं। उनके बाल खुले हुए थे। दोनों हाथों में नङ्गी तलवारें थीं, चहरे की तरफ़ देखा नहीं जाता था। बहुत थोड़ी फौज साथ थी। सब पीले लिबास में थे। मगर पल-भर में इस लिबास पर सुर्खी चढ़ गई। रानी और उसकी वह छोटी-सी फौज काई की तरह हज़ारों फ़ौज को चीरती हुई शाही खीमे तक चली आई। हम लोग किसी तरह नहीं रोक सके। रास्ते-भर में लाशों का ढेर लग गया। बमुश्किल तमाम क़ब्जे में किया है।

बादशाह—हूँ ! अच्छा जाओ।

(सिपाही का प्रस्थान)

बादशाह—(स्वगत) या खुदा, मुसलमानों को ऐसा एक भी हीरा नहीं अदा किया ? वाहरी जवाँमर्दी !

अब्दुलक़ादिर—जहाँपनाह की फ़तह हुई। अब हुजूर किस जवाँमर्दी की तारीफ कर रहे हैं ?

बादशाह—जवाँमर्दी कुछ और चीज है, और फ़तह कुछ और चीज।

अब्दुलक़ादिर—खुदावंद ठीक फ़र्माते हैं, मगर फ़तह ही…

बादशाह—बहस मत करो। अब्दुलक़ादिर साहब, यह सवाल कुरान का नहीं है।

अब्दुल०—(नाराज़ी से) क्या जहाँपनाह कुरान मजीद की तौहीन……

बादशाह—(हँसकर, बीच में) नहीं-नहीं, जाओ।

(प्रस्थान)

———

दसवाँ दृश्य

[**स्थान**—कैदखाना शाही]

(**समय**—संध्या)

(रानी अकेली टहल रही है)

रानी—(स्वगत) यह भी हुआ ! पर कैसे कुसमय। स्वामी भी नहीं हैं, फतहसिंह भी नहीं है। क़िला भी नहीं है, कोई नहीं है। मैं थी, सो यहाँ हूँ। (छाती पर हाथ मारकर) आह ! चित्तौड़ की रक्षा का कोई उपाय नहीं। (पैर पटककर) नगर में क़तले आम हो रहा है—बालक-वृद्ध-बच्चे सब तलवार के घाट उतारे जा रहे हैं। दुर्ग में मस्त हाथी रौंद रहे हैं। उफ़ ! मैं यहाँ कहाँ ज़िन्दान में बैठी हूँ ? (उत्तेजित होकर उठ खड़ी होती है) कहाँ है तलवार ? कहाँ है घोड़ा ? जगवंत ! जगवंत ! (सिर पकड़कर) आह ! मैं कैद में हूँ। समझी। (कुछ रुककर) छिः ! (पैर पटककर) कैद ? इस समय ? नहीं, कदापि

नहीं। मुझे फ़ुर्सत नहीं है। (पुकारकर) कौन है? पहरे पर कौन है?

(जमादार का प्रवेश)

जमादार—आप क्या चाहती हैं?

रानी—तुम्हारा अफ़सर कौन है?

जमादार—सलावतख़ाँ सूबेदार।

रानी—उन्हें बुलाओ।

जमादार—अभी?

रानी—अभी।

जमादार—क्या काम है?

रानी—(क्रोध से पैर पटककर) अभी बुलाओ, अभी!

(सिपाही रानी की सूरत देखकर डरता हुआ भागता है)

(सलावत का प्रवेश)

सलावत—महारानी क्या चाहती हैं?

रानी—क्या तुमने मुझे यहाँ रख छोड़ा है?

सलावत—नहीं। बादशाह सलामत ने। मैं पहरे पर हूँ।

रानी—मुझे फ़ौरन बादशाह के सामने ले चलो।

सलावत—बादशाह का हुक्म नहीं है।

रानी—(दर्प से) मेरा हुक्म है।

सलावत—(नर्मी से) माफ़ फ़र्माएँ। आपका हुक्म मैं नहीं मान सकता। आप क़ैदी हैं और मैं शाही बन्दा हूँ।

रानी—(गुस्से से होंठ चबाकर) बादशाह का हुक्म ले जाओ। मैं एक पल-भर भी यहाँ नहीं ठहर सकती, मुझे इतनी फ़ुर्सत नहीं है।

(चलने को उद्यत होती है)

सलावत—(घबराकर) दो मिनिट आप ठहरें, मैं अभी बादशाह सलामत से अर्ज करता हूँ।

(प्रस्थान)

रानी—(स्वगत) अधिकार ही शक्ति है। वही हुक्म है। मेरा हुक्म कुछ नहीं? ख़ैर, पर ये मुझे रानी क्यों कहते हैं? क्या उपहास करते हैं? चित्तौड़ के राठौर-अधिनायक की स्त्री का उपहास? (होंठ चबाकर) हूँ!

(सलावत का प्रवेश)

सलावत—बादशाह सलामत खुद तशरीफ़ ला रहे हैं।

(उमराओं के साथ बादशाह का प्रवेश)

(रानी और बादशाह क्षण-भर विचित्र दृष्टि से एक दूसरे को देखते हैं)

बादशाह—महारानी!

रानी—(बात काटकर) मुझे क़ैदी कहिए। मैं महारानी नहीं हूँ। महारानी का हुक्म होता है, अधिकार होता है, सुहाग होता है; मेरा कुछ नहीं है। मैं आपकी क़ैदी हूँ।

बादशाह—महारानी, लड़ाई के उसूल निहायत सख्त होते हैं। मुझे इस बेअदबी के लिये माफ फर्मावें कहिए, मुझसे आपको क्या कहना है?

रानी—मुझे आपने क्यों क़ैद कर रक्खा है। मुझे फौरन रिहा दीजिए, मैं क़ैद रहना नहीं चाहती। मुझे जानी फ़िक्र नहीं है। जल्लादों को बुलाइये।

बादशाह—ना रानी! खुदा अकबर को ऐसी अक्ल न दे कि उसे आप जैसी पाकीजा बहादुर औरत के साथ जुल्म करना पड़े।

रानी—(घृणा से हँसकर) तो अभी ईश्वर है ! और अकबर उसे जानता है ? मगर चित्तौड़ में और क़िले में जो कुछ हो रहा है, वह आप ही का काम है न ?

अकबर—मुझे अफ़सोस है। मगर जङ्ग तो जङ्ग ही है।

रानी—जङ्ग ! जङ्ग क्यों है ? दिल्ली के बादशाह को यदि चित्तौड़ के राजपूतों ने बेटी नहीं दी, तो इसमें क्या पाप किया ? दूसरों की स्वाधीनता का इकट्ठा रस निचोड़ कर पीने में बादशाही गौरव क्या बढ़ जाता है ?

बादशाह—(झेंपकर) सही है। मगर खुदा ने हिन्द की शहंशाही मुझे अता की है। यह कब मुमकिन है कि मैं उसमें इस क़िस्म के सूराख देखूँ।

रानी—(तीव्रता से घृणा के स्वर में) ठीक है। मेवाड़ की उजाड़ शहंशाही आपको मुबारक हो ! कल गीदड़, चील, गिद्ध क़िले और शहर में घुसेंगे, लूटेंगे, मनमानी शहंशाही करेंगे। आप भी तो उन्हीं के साथ घुसिए। भयंकर खण्डहर, सड़ी लाशों और धधकती चिताओं पर शहंशाही का ताज पहनिये। अपने ताज के सितारों पर यह एक फ़तह का चमकदार सितारा और लटका लीजिए। पर मेरा फ़ैसला कर दीजिए। अभी जल्लाद बुलवाइए। मुझे यहाँ ठहरने की रत्तीभर फ़ुर्सत नहीं है।

बादशाह—(लज्जित और अनुनत होकर) मैं आपको छोड़ता हूँ। आप खुशी से क़िले में चली जायँ।

रानी—मगर मैं आपके खून की प्यासी हूँ।

बादशाह—कोई अजब नहीं। मैं आपके ख़ाविन्द का खूनी हूँ। (दीरबल से) राजा साहब, महारानी की सवारी

सलावत—(घबराकर) दो मिनिट आप ठहरें, मैं अभी बादशाह सलामत से अर्ज करता हूँ।

(प्रस्थान)

रानी—(स्वगत) अधिकार ही शक्ति है। वही हुक्म है। मेरा हुक्म कुछ नहीं? खैर, पर ये मुझे रानी क्यों कहते हैं? क्या उपहास करते हैं? चित्तौड़ के राठौर-अधिनायक की स्त्री का उपहास? (होठ चबाकर) हूँ!

(सलावत का प्रवेश)

सलावत—बादशाह सलामत खुद तशरीफ़ ला रहे हैं।

(उमराओं के साथ बादशाह का प्रवेश)

(रानी और बादशाह क्षण-भर विचित्र दृष्टि से एक दूसरे को देखते हैं)

बादशाह—महारानी!

रानी—(बात काटकर) मुझे कैदी कहिए। मैं महारानी नहीं हूँ। महारानी का हुक्म होता है, अधिकार होता है, सुहाग होता है; मेरा कुछ नहीं है। मैं आपकी कैदी हूँ।

बादशाह—महारानी, लड़ाई के उसूल निहात सख्त होते हैं। मुझे इस बेअदबी के लिये माफ फर्मावें कहिए, मुझसे आपको क्या कहना है?

रानी—मुझे आपने क्यों कैद कर रक्खा है। मुझे फौरन सजा दीजिए, मैं कैद रहना नहीं चाहती। मुझे इतनी फुर्सत नहीं है। जल्लादों को बुलाइये।

बादशाह—ना रानी! खुदा अकबर को ऐसी अक्ल न दे कि उसे आप जैसी पाकीजा बहादुर औरत के साथ जुल्म करना पड़े।

रानी—(घृणा से हँसकर) तो अभी ईश्वर है! और अकबर उसे जानता है? मगर चित्तौड़ में और क़िले में जो कुछ हो रहा है, वह आप ही का काम है न?

अकबर—मुझे अफ़सोस है। मगर जङ्ग तो जङ्ग ही है।

रानी—जङ्ग! जङ्ग क्यों है? दिल्ली के बादशाह को यदि चित्तौड़ के राजपूतों ने बेटी नहीं दी, तो इसमें क्या पाप किया? दूसरों की स्वाधीनता का इकट्ठा रस निचोड़ कर पीने में बादशाही गौरव क्या बढ़ जाता है?

बादशाह—(झेंपकर) सही है। मगर खुदा ने हिन्द की शहंशाही मुझे अता की है। यह कब मुमकिन है कि मैं उसमें इस क़िस्म के सूराख देखूँ।

रानी—(तीव्रता से घृणा के स्वर में) ठीक है। मेवाड़ की उजाड़ शहंशाही आपको मुबारक हो! कल गीदड़, चील, गिद्ध क़िले और शहर में घुसेंगे, लूटेंगे, मनमानी शहंशाही करेंगे। आप भी तो उन्हीं के साथ घुसिए। भयंकर खण्डहर, सड़ी लाशों और धधकती चिताओं पर शहंशाही का ताज पहनिये। अपने ताज के सितारों पर यह एक फ़तह का चमकदार सितारा और लटका लीजिए। पर मेरा फ़ैसला कर दीजिए। अभी जल्लाद बुलवाइए। मुझे यहाँ ठहरने की रत्तीभर फ़ुर्सत नहीं है।

बादशाह—(लज्जित और अनुनत होकर) मैं आपको छोड़ता हूँ। आप खुशी से क़िले में चली जायँ।

रानी—मगर मैं आपके खून की प्यासी हूँ।

बादशाह—कोई अजब नहीं। मैं आपके ख़ाविन्द का खूनी हूँ। (दीवान से) राजा साहब, महारानी की सवारी

इज्जत के साथ किले के फाटक तक पहुँचा दी जाय। और आज लड़ाई बन्द कर दी जाय, ताकि किले वालों को कल के लिए तैयारी करने का मौक़ा मिले।

(प्रस्थान)

(बीरबल के साथ रानी का प्रस्थान)

———

ग्यारहवाँ दृश्य

[स्थान—राजमहल]

(समय—प्रभात)

(रानी धरती में औंधी मुँह पड़ी है, नेपथ्य में गान)

गायन—प्रातःश्री

जय जय जग-आश-रूप ऊपे सुखदाई।
जागृति-मय पुण्य-प्रभा पूरब प्रगटाई।
शीतल सुरभित समीर।
सरल सुखद धीर धीर।
वहत परस सरस नीर।
प्राणन हर्षाई। जय०
नव द्रुम पल्लव डुलाय।
सुमन सुमन रज बिछाय।
प्रकृत प्रकृति-रंग रचाय।
शोभा दर्शाई। जय०

रानी—(बैठकर) गया। सब गया। राज-पाट, जीवन, सुख, सुहाग सब गया। कल मैं रानी थी, देश की माता थी। आज असहाय अबला हूँ। (आकाश की ओर देखकर) स्वामिन्, मेरे दर्प को क्षमा करना। चित्तौड़ को न बचा सकी। चित्तौड़ के श्मशान में महाचिता जलने की घड़ी आ गई। चिता धायँ-धायँ जलेगी और उसकी राख मुँह पर लपेटकर मुगल-साम्राज्य सुशोभित होगा! (उठकर) कैसा सुन्दर दिन है, धूप कैसी चमक रही है। ये अरावली की हरी-भरी पहाड़ियाँ कैसी सुहावनी दीख रही हैं अहा-हा! कैसी शीतल वायु चल रही है। आज यह सब समाप्त!

(नेपथ्य में गान)

अन्ध निशा विगत गई।
शुभ्र दिशा प्रगट भई।
आश के सुवर्ण तार।
शुभ्र ज्योति लाई। जय०
सहृदय संताप पेखि।
ओस अश्रु सजल नेत्र।
दया द्रवित अति पुनीत।
प्रात-मात आई। जय०

बच्ची गा रही है। भोली, गुलाब के फूल के समान बच्ची, कमलिनी के समान कोमल बच्ची, बेचारी बिना बाप की बच्ची, मेरी बेटी, मेरी बिटिया। (पुकारकर) बेटी, कमला!

कमला—(दौड़कर) माता।

रानी—क्या गा रही है, बेटी?

कमला—वही प्रातःश्री का गीत!

रानी—(आँसू रोककर) मेरी अच्छी बिटिया, मेरे लाल ! गीत समाप्त करो। चलो पिता बुला रहे हैं। वहाँ चलें ! (आकाश की ओर उँगली उठाती है)

(लड़की भीत दृष्टि से ऊपर देखती है)

लड़की—(कंपित स्वर में) मा !

(नेपथ्य में)

'तैयार रहो, तैयार रहो।'

अखिला—(प्रवेश करके) तैयार ! तैयार किस लिए ?

रानी—वह देखो पेरवसिंह आ रहे हैं।

(पसीने से तर खून से लतपत पेरवसिंह का प्रवेश)

पेरव०—महारानी ! सब लोग तैयार हो जाओ।

अखिला—किसलिए ? किसलिए ?

पेरव०—अपनी रक्षा के लिए।

रानी—हम तैयार हैं। क्या खबर है पेरव, इतना अधैर्य ?

पेरव— (ज़ोर से अर्राटे का शब्द) ओफ़ ! दुर्ग टूटा। शत्रु क़िले में घुस आये हैं। दोनों पार्श्व का कोट भग्न हो गया। सभी वीर जूझ गए। ५०० वीर बचे हैं, वे झुरमुट बाँधकर माता के मन्दिर को घेरकर नंगी तलवार लिए खड़े हैं। शहर में क़त्ले आम हो रहा है। नगर की स्त्रियाँ खिड़कियों से गर्म तेल उलीच रही हैं। बालक छतों पर से ईंट-पत्थर बरसा रहे हैं। बनियों ने तराजू-बाँट से प्रहार किया है। गलियों में रक्त की धार बह रही है। कटे हुए सिर, तड़पते हुए धड़ जगह-जगह धूल में लोट रहे हैं। शत्रु प्रत्येक घर में घुसते, लूटते और आग

लगाते हैं। नगर धाँय-धाँय जल रहा है। (कोलाहल) शत्रु शायद इधर ही आ रहे हैं। महारानी !......

रानी—तब ?

पेरव—जो महारानी की आज्ञा।

रानी—(छाती ऊँची करके) कुछ परवा नहीं। सीसोदियावंश का रक्त-विन्दु अन्त तक ठण्डा न होने पावे। खबरदार ! जब तक जौहर-व्रत पूर्ण न हो, बचे हुए वीरों में से न कोई मरे, न कोई गिरे, न कोई हटे ! जाओ। (घूमकर) अखिला ! बेटी !

अखिला—मा !

रानी—बेटी ! कठिन कर्तव्य का समय आ गया। क्या सब तैयार हैं ?

अखिला—सब तैयार हैं, मैं तैयार हूँ। १४ हज़ार राजपूत-वीरांगनाएँ तैयार हैं।

रानी—तब विलम्ब क्यों ? चिता में अग्नि दो।

(अखिला का प्रस्थान)

रानी—(घूमकर पेरव से) ऐं ! अभी तक खड़े हो ?

पेरव—महारानी ! शत्रु अत्यन्त प्रतिष्ठापूर्वक सन्धि करने को प्रस्तुत हैं।

रानी—(क्षण भर स्तब्ध रहकर) क्या कहा ?

पेरव—(भयभीत स्वर से) समय के लिए बच रहना राजनीति है।

रानी—(घृणा से) हे, तुम मेरे जामाता होने वाले थे। अच्छा हुआ, तुम्हारे विचार प्रथम ही मालूम हो गये। अब से तुम सितौर में अपरिचित समझे गए। (पुकारकर) क़िले में कोई वीर सीसोदिया है ?

पेरव—महारानी। माता! क्षमा, पेरव कायर नहीं है! मेवाड़ की माता! आपकी जय हो, आज्ञा हो मा। क्षमा—क्षमा। (घुटनों के बल बैठता है).

रानी—(पूरी ऊँचाई में तनकर) मर मिटो, पर अपमानजनक शब्द मुख पर मत लाओ। मेरी आज्ञा है, जब तक व्रतपूर्ण न हो, कोई न मरे, न गिरे, न पीछे हटे। जाओ। अब उस लोक में हम मिलेंगे।

(पेरव का उन्मत्त भाव से तलवार घुमाते हुए प्रस्थान)

कमला—(थर-थर काँपती हुई) माँ! माँ! मुझे बड़ा भय लग रहा है। आग! ना, ना, माँ! उस दिन मेरी गुड़िया जल गई थी, (धरती पर गिरककर) माँ! माँ बचाओ!

रानी—(कड़े स्वर में कलाई पकड़कर) लड़की! अपने स्वर्गवासी पिता को लज्जित न कर; मेरी कोख और दूध को न लजा, खड़ी हो।

'महारानी की जय हो।' (बहुत-सी स्त्रियों का प्रवेश)

रानी—हमारी जय मृत्यु है। हम मृत्यु के व्यवसायी हैं। चलो स्वर्ण-देश में, चढ़ो 'स्वर्ण-सीढ़ी पर, देखो, आकाश में महाराज हमें देख रहे हैं। अहाहा! कैसा तेज है, वही तेज हम में रमे, उसी तेज में हम लीन हों। आओ, बहनो! क्षत्राणियों! आज हम ऐसी आग सुलगावें, जिसमें दिल्ली का तख्त भस्म हो जाय, सात समुद्रों का पानी भी उसे न बुझा सके। बेटी अखिला!

अखिला—माता!

रानी—तो फिर चलो मरने।

अखिला—चलो।

(प्रस्थान)

(चिता जलती है, स्त्रियाँ जल रही हैं। नेपथ्य में धीमे स्वर में गान)

गायन—सोहनी

वीर क्षत्राणी सुमाता स्वर्ग-सीढ़ी चढ़ रहीं।
देख लो उत्सर्ग अब ये दिव्य देवी बन रहीं।
यां बुला लाओ उन्हें, उत्सर्ग यह वे देख लें,
आग की लपटें लिपटकर प्यार कैसा कर रहीं।
राजपूताना सदा से वीरता में था अनूप;
आज से बस त्याग में भी ख्याति वोही मिल गई।
जीवनी क्षत्राणियों का थी अलौकिक सर्वथा,
मृत्यु यह उससे अधिक बढ़कर अलौकिक बन गई।
तेज के अवतार बन भूलोक आलोकित किया;
तेज की ये मूर्तियाँ थीं तेज ही में मिल गईं।

(अकबर का दरबारियों सहित घबराए हुए प्रवेश, और चकित खड़े रहना)

[पटाक्षेप]

※ समाप्त ※